श्रीनिम्बार्क–पद्धति

व्रजविदेही महन्त और

चतुःसम्प्रदाय के श्री महन्त श्री १०८

स्वामी धनञ्जयदासजी काठियाबाबा

तर्क तर्क व्याकरणतीर्थ

श्रीनिम्बार्क-पद्धति

ब्रजविदेही महन्त और
चतुःसम्प्रदाय के श्री महन्त श्री १०८
स्वामी धनञ्जयदासजी काठियाबाबा
तर्क तर्क व्याकरणतीर्थ

श्रीराधावृन्दावनविहारी जयति

भगवते श्रीनिम्बार्काचार्याय नमः

श्रीनिम्बार्क-पद्धति

(विभिन्नशास्त्रसम्मत निर्देश और उपदेश संवलित)

व्रजविदेही महन्त और चतुःसम्प्रदाय के श्रीमहन्त
श्री १०८ स्वामी धनञ्जयदास काठिया बाबाजी महाराज
तर्कतर्क व्याकरणतीर्थ संकलित

अनुवादक
वृन्दावनविहारी दास

मूल्य ८·५०

प्रकाशक : श्रीमत्स्वामी कानइयादासजी
काठिया बाबा का स्थान, गुरुकुल रोड, वृन्दावन,
जि०—मथुरा, उ० प्र०

प्रथम हिन्दी संस्करण-जूलाई १९८७ ई०

प्राप्तिस्थान
१. काठिया बाबा का स्थान
गुरुकुल रोड, वृन्दावन,
जि०—मथुरा, उ० प्र०

२. काठिया बाबा का आश्रम
बी ३/३१०, शिवाला, वाराणसी–१
पिन्–२२१००१ यू० पी०

३. काठिया बाबार आश्रम
पो० सुखचर,
जि०—२४ परगना
पश्चिम बंगाल

४. चौखम्भा विश्वभारती
चौक (चित्रा सिनेमा के सामने)
पो० वाक्स नं० १०८४
वाराणसी–२२१००१

मुद्रक :
आर्यकल्प मुद्रणालय
बी २२/१९६ शंकुधारा, वाराणसी
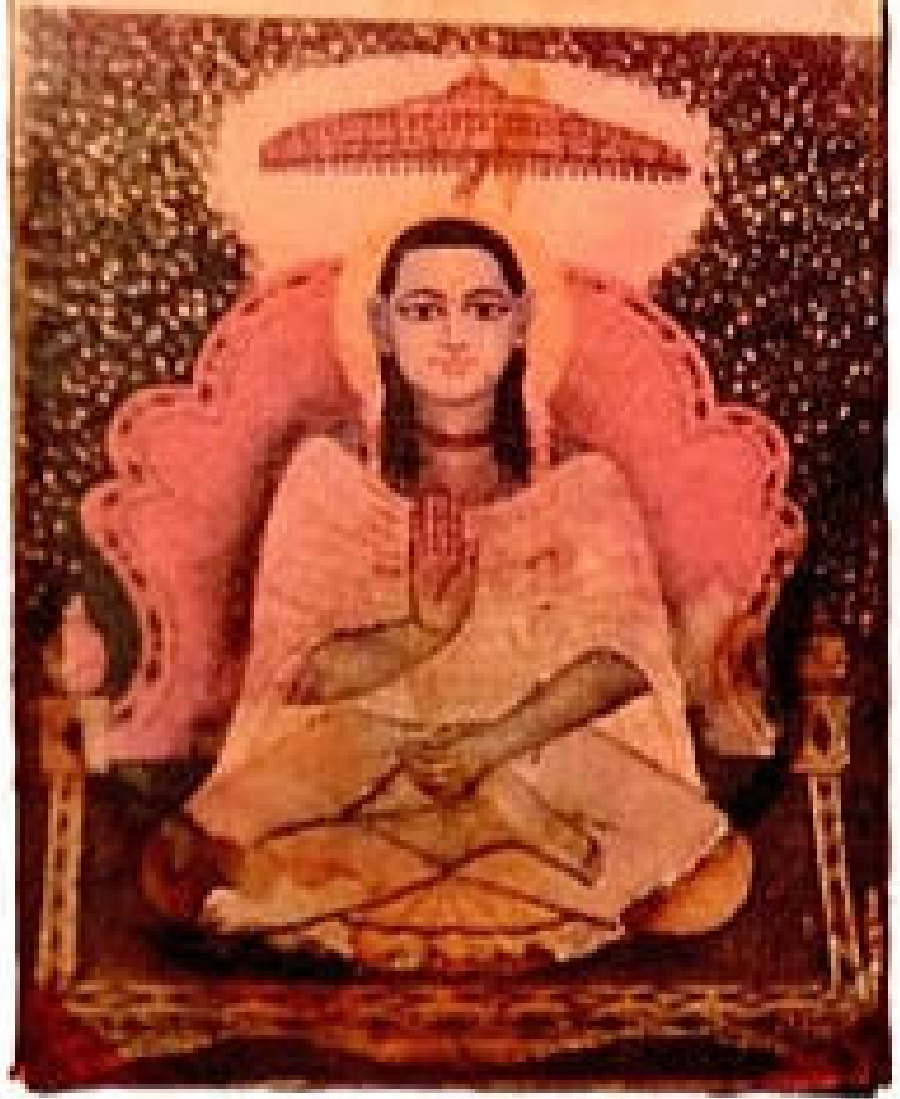
॥ जगदगुरु भगवान श्री निम्बार्काचार्य्य ॥

हे निम्बार्क, दयानिधे, गुणनिधे, हे भक्त-चिन्तामणे !

हे आचार्य्य-शिरोमणे, मुनिगणेशमृग्य-पादाम्बुज !

हे सृष्टि-स्थिति पालन-प्रभवन् ! हे नाथ, मायाधिप !

हे गोवर्द्धन-कन्दरालय ! विभो ! मां पाहि सर्वेश्वर !
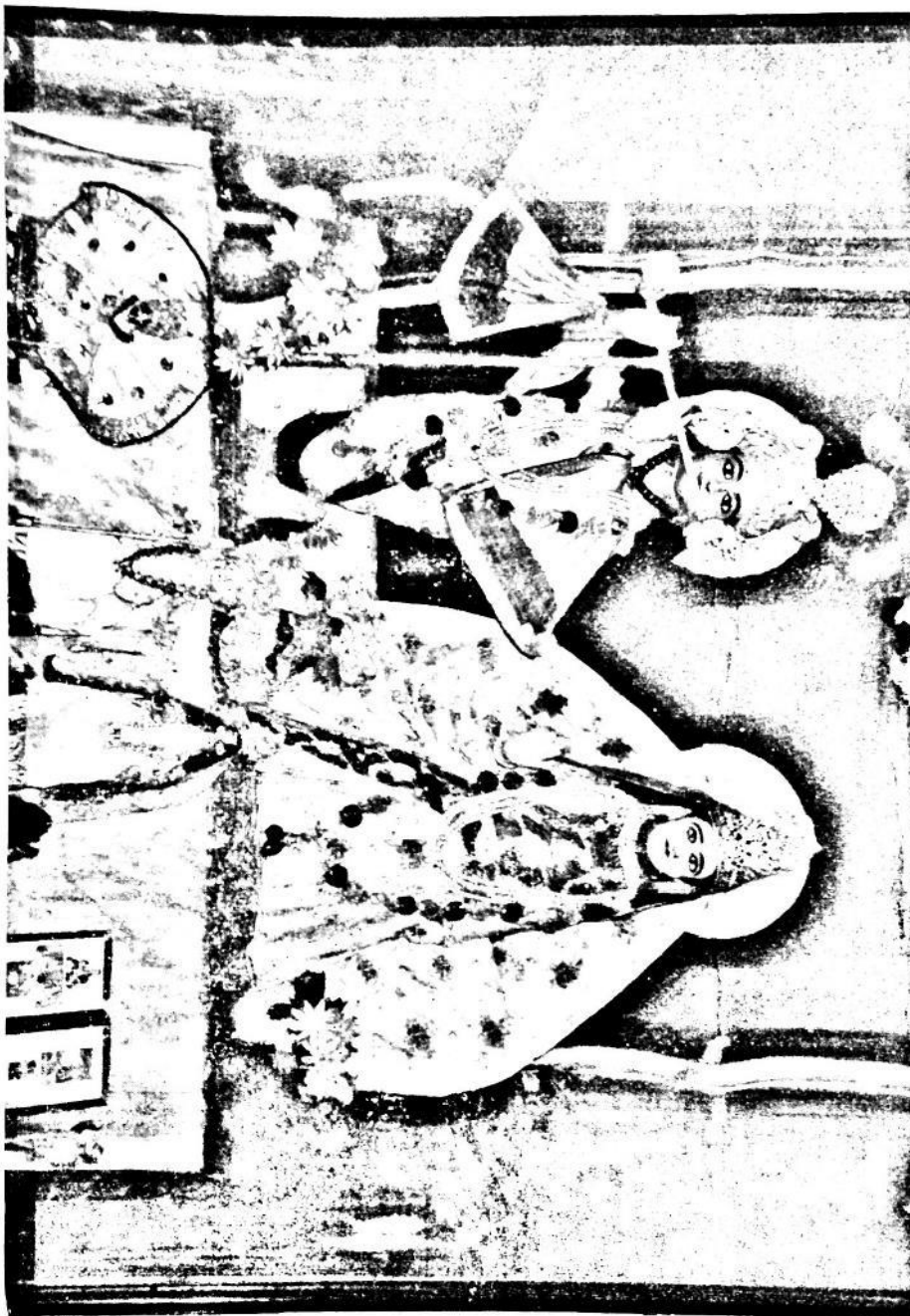
SRI SRI JUGAL BIGRAHA

OF

भूमिका

वैष्णवसम्प्रदायों में श्रीनिम्बार्कसम्प्रदाय प्राचीनतम है, इसे सनकसम्प्रदाय या चतु:सम्प्रदाय भी कहा जाता है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य श्रीनिम्बार्क भगवान् हैं। आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक तापों से जर्जरित-विषयासक्त मानवों के परमश्रेयः-साधनार्थ आचार्यप्रवर श्रीनिम्बार्क ने अमूल्य सद्ग्रन्थों का निर्माण तथा प्रस्थानत्रयी पर अनुपम भाष्य की रचना की है। प्रस्तुत पुस्तक "श्रीनिम्बार्क-पद्धति" आचार्य श्री के सद् उपदेशों का संक्षिप्तातिसंक्षिप्त संकलन एवं अनुवाद है। एतदतिरिक्त इसमें श्रीगुरुपरम्परागत महापुरुषों द्वारा रचित छोटी-छोटी-स्तुतियाँ भी दी गई है।

भोगप्रधान, वर्त्तमान युग में मानव समाज को स्थिति बहुत ही शोचनीय हो गई है। इसका मुख्य कारण धर्माचरण का अभाव है। धर्म मानवजाति का मेरुदण्ड है। अतः आत्मोन्नति तथा समाज कल्याण हेतु धर्माचरण करना परम आवश्यक है। आहार, निद्रा, भय और मैथुनादि कार्य पशु एवं मनुष्यों में समान रूप से ही विद्यमान हैं। किन्तु एकमात्र धर्म ही मानव-जाति की परम सम्पदा है। धर्महीन मानव पशु के समान है। यही बात इस श्लोक से कही गई है—

"आहार-निद्रा-भय-मैथुनञ्च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥"

धर्मदीपिका में भी कहा है—

"विहितक्रियासाध्यो धर्मः इतरस्तु अधर्म इति।"

अर्थात् श्रुति-स्मृति प्रमाणित सत्कर्म का आचरण ही धर्म है, इससे भिन्न-अधर्म है।

इस प्रकार शास्त्रीयपद्धति से धर्माचरण करने से मनुष्य इस लोक में उत्तमकीर्ति प्राप्त करता है और परलोक में महान् सुख का उपभोग करता है।

भगवान् मनु की मनुस्मृति में यही उक्ति है—

"श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्॥"

प्रस्तुत "निम्बार्क-पद्धति" निम्बार्कीय वैष्णवों के लिए यद्यपि अन्यतम धर्मग्रन्थ है, तथापि इसका अनुशीलन करने से सभी वैष्णव सरलता से भागवद्धर्म को भलीभाँति जान सकेंगे।

हमारे माननीय गुरुभ्राता श्रीवीरेश्वरभट्टाचार्य की विशेष प्रार्थना तथा आग्रह करने पर हमारे परमाराध्य गुरुदेव श्री १०८ स्वामी श्री धनञ्जयदास काठियाबाबा तर्कतर्क व्याकरणतीर्थ ने मानवों के परमकल्याण साधनार्थ-शास्त्र-शास्त्रान्तरों से विधिप्रमाण संकलन करके बंगभाषा में "श्रीनिम्बार्क-पद्धति" की रचना की थी। बंगीयमानवों को उक्त ग्रन्थ ने बहुत प्रभावित किया। इस धर्मग्रन्थ के अध्ययन से बंगाल में वैष्णव धर्म एवं निम्बार्कीय महापुरुषों का सम्यक प्रचार-प्रसार हुआ। किन्तु यह केवल बंगाल में ही सीमित नहीं रहना चाहिए अपितु अन्यत्र भी प्रचार-प्रसार होना चाहिए इसी दृष्टिकोण से हमारे प्रिय गुरुभाई पण्डितप्रवर श्रीवृन्दावनविहारीदास जो नव्यव्याकरणाचार्य, एम० ए० ने इस ग्रन्थ का हिन्दी भाषा में अनुवाद करके सबका उपकार किया। हम श्रीभगवच्चरण-कमल में सर्वदा उनकी मंगलकामना करते हैं। धार्मिक हिन्दीभाषी जनता उक्त ग्रन्थ को पढ़कर विशेष लाभान्वित होंगी।

वस्तुतस्तु "श्रीनिम्बार्क-पद्धति" पुस्तक रूप में एक महान् पोतस्वरूप है। जैसे मानव जहाज पर चढ़कर अनायास समुद्र को पार कर सकता है; वैसे ही "श्रीनिम्बार्क-पद्धति" का अनुशीलन कर मानव घोर दुस्तर संसारसागर को पार कर सकता है। श्रीमच्छंकराचार्य भगवान् की भाषा में "भवतिभवार्णवतरणे नौका"। श्रीमद्भगवद्गीता की भाषा में "मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते"। शास्त्रीयग्रन्थ श्रीभगवान् का अभिन्न रूप है। शास्त्रस्वरूप भगवान् जीवों का परमकल्याण साधन करते हैं। इसमें कोई संशय नहीं, गीता में भगवान् को उक्ति है—

"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।"

यथार्थरूप में शास्त्र की कृपा होने से जीव माया को अतिक्रमण करके भगवद्धाम को प्राप्त कर सकता है। इसलिए शास्त्रानुशीलन की परम आवश्यकता भगवान् ने स्वीकार की है।

पुण्य भूमि भारतवर्ष के मुकुटशिरोमणि एवं सनातनधर्म के संरक्षक ऋषि-मुनियों की अमृतमयी आशीर्वाणी।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेद्॥"

का हम कभी विस्मरण न करें।

दिनांक—१-७-८७ ई०   इति

व्रजविदेही महन्त और चतुःसम्प्रदाय के श्रीमहन्त
श्री १०८ स्वामी रासविहारीदास जी काठिया बाबा
काठिया बाबा का स्थान
गुरुकुल रोड, पो० वृन्दावन,
जि०—मथुरा, उ० प्र०

प्रकाशक का निवेदन

"श्रीनिम्बार्क-पद्धति" ग्रन्थ के चतुर्थ संस्करण की भूमिका में महन्त महाराज "श्री श्री १०८ स्वामी धनञ्जयदास जी काठिया बाबा" ने अपना वक्तव्य प्रकाशित किया है। उसी ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद उनका प्रिय शिष्य श्री वृन्दावनविहारीदास जी व्याकरणाचार्य, एम० ए० ने किया है।

अनुवाद का कार्य पूरा होने पर उन्होंने प्रकाशन का भार मुझ पर सौंपा। श्रीगुरुकृपा से सर्वसाधारण के कल्याण के लिए ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। बंगला में इस ग्रन्थ के प्रकाशन में तथा लेखन में जिनका सर्वप्रथम प्रयास रहा उनके बारे में भूमिका लेखक ने सब कुछ कह दिया है। अतः मुझे इस बारे में कुछ कहना ग्रन्थ के कलेवर को बढ़ाना ही होगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रारम्भ भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यप्रणीत "वेदान्तकामधेनु दशश्लोकी" से किया गया है तथा अन्त "श्री अमरप्रसादभट्टाचार्यविरचित" श्री गुरु महिम्नः स्तोत्र से किया गया है। बीच में वर्त्तमान कर्मबहुल जनता की सुविधा हेतु संक्षिप्त पूजापद्धति दी गयी है। साथ ही साथ विभिन्न इष्टों को ध्यान में रखकर संस्कृतस्तोत्रों का तथा भाषास्तोत्रों का संकलन किया गया है। विशेषज्ञातव्य प्रकरण में विभिन्न शास्त्रप्रमाणो से गुरुमाहात्म्य, दीक्षा की आवश्यकता, मन्त्रार्थ तथा एकादशी आदि व्रतोत्सवों का सुसंगत निर्णय किया गया है। इन सभी विषयों को तथा अन्यज्ञातव्य विषयों को समझाने के लिए सुविधा हेतु चार अध्यायों में संकलन किया गया है।

आशा करता हूँ, प्रस्तुत पुस्तक पाठ से तथा उसके अनुष्ठान से श्री श्री गुरुपरम्परा की कृपा से सर्वसाधारण का कल्याण ही होगा। इस पुस्तक के अनुवाद में जिन लोगों ने सहायता दी है, उन सभी का कल्याण हो तथा जिन भक्तों ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु आर्थिक सहायता दी है, उन पर प्रभु की कृपा निरन्तर बनी रहे। यही मेरी कामना है।

दि०—२२–६–८७ ई०

इति

निवेदक

श्रीमत्स्वामी कानइयादासजी

अनुवादक का निवेदन

सनातनधर्मावलम्बि जनता के समक्ष "श्रीनिम्बार्क-पद्धति" नामक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करते हुए मुझे प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

यद्यपि मेरा जन्म बंगाल में हुआ है। अतः मेरी मातृभाषा बंगला है। तथापि कुछ वर्ष वाराणसी में निवास करने के कारण कुछ-कुछ हिन्दी बोलने का अभ्यास तो हुआ

परन्तु अनुवाद जैसे क्लिष्ट कार्य करने की योग्यता प्राप्त तो नहीं हुई। इस स्थिति में प्रभु का स्मरण करके हिन्दी में अनुवाद करने के लिए उद्यत हुआ। क्योंकि प्रभु की कृपा से मूक भी वाणी से अलंकृत हो जाता है।

मैंने हिन्दी में अनुवाद करने का जो साहस किया है, उसमें भाषा की दृष्टि से कुछ दोष रहा हो तो विद्वान् मुझे क्षमा करेंगे। मैंने हिन्दी ज्ञान के अनुसार सहज और सुबोधभाषा में मूल भाव को यथावत् प्रकाशित करने का प्रयास किया है। इस अनुवाद के बीच-बीच में कुछ बंगला में रचित गुरुभजन जिनका कि काठियाबाबा के आश्रमों में प्रचलन है यथावत् रख दिया।

"आचारः परमोधर्मः" इससे आचरण पक्ष पर ही हमारे शास्त्रों में विशेष ध्यान दिया गया है। कितना भी वेद पढ़ा हो यदि वह उत्तम आचरण से विहीन हो तो उसका वेद पढ़ना भी निरर्थक है। अतः पाठक वर्ग इसे पढ़कर यदि तदनुकूल आचरण करते हैं तो मेरा यह प्रयास सार्थक होगा। हमें पूरा विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक भागवद्धर्मालम्बियों भक्तों, विद्वानों और सज्जनों के लिए उपयोगी एवं रुचिकर सिद्ध होगी।

इस पुस्तक का मूल्य कम से कम रखने का प्रयास किया गया है। जिससे सभी कोई पढ़ सकें। इस पुस्तक के विक्रयलब्ध समस्त धन वृन्दावन आश्रम के श्रीराधा-वृन्दावनविहारी जी का ही होगा।

अन्त में "सर्वारम्भास्तण्डुलप्रस्थमूलाः" इस उक्ति के अनुसार कुछ भी कार्य अर्थ के विना नहीं हो सकता। इसलिए इस पुस्तक को प्रकाशित करने में आर्थिक सहायता देने वाले (१) ब्रजविदेही महन्त और चतुःसम्प्रदाय के श्रीमहन्त श्री १०८ स्वामी रासविहारीदास जी काठियाबाबा, (२) महन्त श्री स्वामी राधाकृष्णदास जी काठियाबाबा, (३) नेपालचक्रवर्ती, (४) नारायणदास, (५) नित्यानन्द मित्र, (६) हेमचन्द्रशर्मावरदले, (७) मृणालकान्तिदास भौमिक (८) पतितपावन राय जैसे सज्जनों का उपकार जीवन भर नहीं भूल सकता। परमात्मा इनको सपरिवार दीर्घजीवी, स्वस्थ और उत्तरोत्तर उन्नतिशील, बनावें, यही मेरी कामना है। इस पुस्तक के प्रकाशन के समय प्रूफ आदि संशोधन में कुछ विद्वानों से राय ली है। अतः उनका मैं अत्यधिक कृतज्ञ हूँ। अपि च प्रेस के अध्यक्ष श्री अवधेश नारायण मिश्र ने इस पुस्तक को शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित करने के लिए जो सहयोग दिया उसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। सीसकाक्षर (कम्पोजिटर) भरत जी को मैं भूल नहीं सकता क्योंकि मेरा प्रेस कापी देखते ही कम्पोज कर देते थे। सुखचर आश्रम कमेटी के अध्यक्ष श्री सुधांशुबोस ने इस पुस्तक का अनुवाद की अनुमति देकर मुझे उपकृत किया तदर्थं उनका तथा उस कमेटी के अन्य सदस्य जितेनबोस जी का

भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। इस पुस्तक को प्रकाश में लाने के लिए जिन्होंने सर्वप्रथम प्रयास किया था उस माननीय गुरुभाई श्री वीरेश्वरभट्टाचार्य जी का भी जीवन भर आभारी हूँ।

दि०—२०-६-८७ ई०

विनीत

अनुवादक

बंगला में प्रकाशित "निम्बार्क-पद्धति" की चतुर्थ संस्करण की भूमिका का अनुवाद

"श्रीनिम्बार्क-पद्धति" ग्रन्थ का चतुर्थ संस्करण प्रकाशित हुआ। सभी भक्तों को उनकी इष्टपूजा, सेवा, नित्यकरणीय साधनानुष्ठान में सहायता के उद्देश्य से इस ग्रन्थ की रचना की गयी है। कुछ ही वर्षों में इस ग्रन्थ का चतुर्थ संस्करण प्रकाशित होने से आशा की जाती है वह उद्देश्य अनेकांश में सफल हुआ है। इस ग्रन्थ में लिखित नियमादि अनुसरण करके चलने पर भक्तिकामी साधकगण का प्रकृत कल्याण होगा। इसमें संशय नहीं है। निम्बार्क सम्प्रदाय के बारे में और भी बहुत कुछ ज्ञातव्य शेष है। जिस व्यक्ति का इस विषय में जिज्ञासा हो, वे मेरे द्वारा रचित श्रीनिम्बार्काचार्य एवं उनका दार्शनिक-मतवाद तथा साधन प्रणाली "ग्रन्थ का द्वितीयभाग एवं सद्धर्मतत्त्वदीप" ग्रन्थ का पाठ की कृपा करें, एतदर्थ मैं उपकृत रहूँगा।

इति

श्री १०८ स्वामी धनञ्जयदास काठिया बाबा

विषय-सूची

भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य-विरचित

वेदान्तकामधेनुः दशश्लोकी

ज्ञानस्वरूपञ्च हरेरधीनं शरीरसंयोगवियोगयोग्यम् ।
अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्नं ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहुः ॥ १ ॥

अनादिमायापरियुक्तरूपं त्वेनं विदुर्वै भगवत्प्रसादात् ।
मुक्तं च बद्धं किल बद्धमुक्तं प्रभेदबाहुल्यमथापि बोध्यम् ॥ २ ॥

अप्राकृतं प्राकृतरूपकञ्च-कालस्वरूपं तदचेतनं मतम् ।
मायाप्रधानादिपदप्रवाच्यं शुक्लादि भेदाश्चसमेऽपि तत्र ॥ ३ ॥

स्वभावतोऽपा तसमस्तदोष-मशेषकल्याणगुणैकराशिम् ।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम् ॥ ४ ॥

अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा, विराजमानामनुरूपसौभगाम् ।
सखीसहस्त्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम् ॥ ५ ॥

उपासनीयं नितरां जनैः सदा प्रहाणयेऽज्ञानतमोऽनुवृत्तेः ।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं श्रीनारदायाखिलतत्त्वसाक्षिणे ॥ ६ ॥

सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकं श्रुतिस्मृतिभ्यो-निखिलस्य वस्तुनः ।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतम् त्रिरूपताऽपि श्रुतिसूत्रसाधिता ॥ ७ ॥

नान्यागतिः कृष्णपदारविन्दात् संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात् ।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहा-दचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात् ॥ ८ ॥

कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते यया भवेत्प्रेमविशेषलक्षणा ।
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः-सा चोत्तमा साधनरूपिकाऽपरा ॥ ९ ॥

उपास्यरूपं-तदुपासकस्य च कृपाफलं भक्तिरसस्ततः परम् ।
विरोधिनो रूपमथैतदाप्तेर्ज्ञेया इमेऽर्था अपि पञ्च साधुभिः ॥ १० ॥

श्रीनिम्बार्क-पद्धति

प्रथम अध्याय

पूजा विधि

श्री श्री राधाकृष्ण ही निम्बार्क सम्प्रदाय के उपास्य देवता हैं। श्री निम्बार्काचार्य जी ने स्वयं अपने द्वारा रचित **"वेदान्त कामधेनु"** ग्रन्थ में श्री श्री राधाकृष्ण का साक्षात् ब्रह्म रूप में ध्यान किया है (४ एवं ५ श्लोक द्रष्टव्य)। उन्होंने उस ग्रन्थ में यह भी कहा है कि "ब्रह्म शिवादि भी जिनके पदारविन्द की वन्दना करते हैं, जिन्होंने भक्तों की इच्छा से ही सुचिन्त्य विग्रह धारण किया है, जिनकी शक्ति चिन्तातीत है एवं जिनका आशय (अभिप्राय) भी अविचिन्त्य है, उस श्रीकृष्ण पदारविन्द से भिन्न संसार सागर से उत्तीर्ण होने का अन्य कोई भी उपाय नहीं देखा जाता है (८ श्लोक द्रष्टव्य)। श्री शुकसुधी जी जिन्होंने "स्वधर्मामृत सिन्धु" नामक स्मृति ग्रन्थ का प्रणयन किया है, उसमें उन्होंने लिखा है—

"राधया सहितो देवो माधवो वैष्णवोत्तमैः।
अर्च्यो वन्द्यश्च ध्येयश्च श्री निम्बार्कपदानुगैः।"

श्री निम्बार्कपदानुगवैष्णवगण श्री राधाजी के साथ देवमाधव (श्रीकृष्ण जी का) अर्चना वन्दना एवं ध्यान करें (९६ पृ०)।

आठ प्रकार से प्रतिमा पूजा करने का विधान है, जैसे १. शैली (शिलामयी), २. दारुमयी, ३. लौही (सुवर्णादि धातुमयी), ४. लेप्या (मृत् चन्दनादिमयी), ५. लेख्या (द्रवीभूत सुवर्णादि द्वारा लिखिता एवं चित्रपट), ६. बालुकामयी, ७. मनोमयी (ध्यान निष्पादिता) एवं ८. मणिमयी (शालग्रामशिलारूपा)। इस प्रकार आठ रूप की प्रतिमा होती है। यह प्रतिमासमूह चला एवं अचला भेद से दो प्रकार के हैं। दो प्रकार की प्रतिमा ही श्री भगवान का विग्रह हैं। अचला प्रतिमा की अर्चना के समय आवाहन एवं विसर्जन नहीं होता है। चला प्रतिमा की अर्चना में आवाहन एवं विसर्जन रह भी सकता है, नहीं भी रह सकता। शालग्रामशिला में प्रतिष्ठा, आवाहन एवं विसर्जन कुछ नहीं होता। जहाँ आवाहन करते हैं वहाँ विसर्जन करते हैं। मृत-चन्दनादिमयी, लेखमयी (चित्रपट इत्यादि) एवं बालुकामयी प्रतिमाको छोड़ कर दूसरे प्रतिमाओं को स्नान कराना चाहिए। श्री भगवान ने कहा है कि मायिक फलवासनाशून्य

भक्त की पूजा मेरी प्रतिमा में यथालब्ध वस्तु से हो सकता है (भाग० ११।२७।१२–१५)। भक्त के द्वारा श्रद्धा सहित दिया गया जल भी मेरा प्रियतम है किन्तु अभक्त कर्तृक अश्रद्धा के साथ अधिक मात्रा में दिया गया द्रव्य से भी मैं सन्तुष्ट नहीं होता (भाग० ११।२७।१७–१८)। श्री गीताजी में श्री भगवान ने कहा है–**भक्ति से जो व्यक्ति** मुझे पत्र, पुष्प, फल, जल प्रदान करता है उस संयत चित्त भक्तों का समस्त उपहारों को मैं ग्रहण करता हूँ (गीता ९।२६)। अतएव सभी लोग अनायास भक्तिपूर्वक जिससे सेवा पूजा कर सकें, इसीलिये यथासम्भव सेवा-पूजा की विधि इस ग्रन्थ में लिख रहा हूँ।

रात ३ या साढ़े तीन बजे निद्रा त्याग कर बिस्तर में बैठ कर मस्तकस्थ सहस्रदलपद्म के ऊपर श्री गुरु का ध्यान करे एवं उसके बाद उस सहस्रदलपद्म के ऊपर ही श्री श्री राधाकृष्ण युगल मूर्त्ति का ध्यान कर प्रणाम करे। अनन्तर सामर्थ्य होने पर भगवान् श्री निम्बार्काचार्य जी के द्वारा विरचित "प्रातःस्तव" पाठ करे। वह प्रातःस्तव बाद में स्तुति के स्थान में दिया गया है।

अनन्तर बिस्तर से उठकर धरती पर पैर रखते समय "ॐ प्रियदत्तायै भुवे नमः" यह कह कर प्रणामपूर्वक शय्या से पहले दाहिना पैर (स्त्री होने पर बाया पैर) भूमि पर रखें। उसके बाद यह प्रार्थना करे—

"समुद्र मेखले देवि पर्वतस्तन मण्डले।
विष्णुपदे नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्वमे॥"

तदनन्तर मलमूत्र त्याग, दन्तधावन एवं स्नानादिक्रिया समापन पूर्वक आसन में बैठकर गोपीचन्दन से द्वादशस्थानों में तिलक धारण करे। तिलक का मन्त्र—

"ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे।
वक्षःस्थले माधवन्तु गोविन्दं कण्ठकूपके॥
विष्णुं च दक्षिणे कुक्षौ बाहौ च मधुसूदनम्।
त्रिविक्रमं कन्धरे तु वामनं वामपार्श्वके॥
श्रीधरं वामबाहौ तु हृषीकेशन्तु कन्धरे।
पृष्ठे तु पद्मनाभञ्च कट्यां दामोदरं न्यसेत॥
तत्प्रक्षालनतोयन्तु वासुदेवादिमूर्धनि॥"

ललाटे—ॐ केशवायनमः, उदरे–ॐ नारायणायनमः, वक्षे–ॐ माधवायनमः, कण्ठे–ॐ गोविन्दायनमः, दक्षिणकुक्षि में–ॐ विष्णवेनमः, दक्षिणबाहु में–ॐ मधुसूदनायनमः, दक्षिणकन्धर में–ॐ त्रिविक्रमायनमः, वामपार्श्वे–ॐ वामनायनमः, वाम बाहु में–ॐ श्रीधरायनमः, वामकन्धरे–ॐ हृषीकेशायनमः, पृष्ठे–ॐ पद्मनाभायनमः, कटि में—ॐ

दामोदरायनमः, इन मन्त्रों से तिलक करके बिन्दी लगाना चाहिए। तत्पश्चात्–ॐ वासुदेवायनमः कह कर मस्तक के ब्रह्मतालु में गोपीचन्दन की बिन्दी लगा कर हाथ धोकर उस जलयुक्त हाथ को माथे में लगायें।

(तिलक भगवान का मन्दिरस्वरूप है) इसमें भगवान प्रतिष्ठित रहकर हमेशा शरीर की रक्षा करते हैं।

उसके बाद, आचमन करे। आचमन का नियमः–ॐ विष्णुः ॐ विष्णुः ॐ विष्णुः, कह कर तीन बार चुल्लू भर जल लेवें। उसके बाद हाथ जोड़ कर "ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयोदिवीव चक्षुराततम्" इस मन्त्र का पाठ करे उसके बाद—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्व्वावस्थांगतोऽपिवा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥"

इस मंत्र का पाठ करते-करते जल अपने माथे पर छिड़के। तत्पर नित्य नियमित इष्ट मन्त्र का जप समाप्त करके भगवान के मन्दिर में गमनपूर्वक पहले इस निम्न मंत्र से गुरुदेव एवं इष्टदेव को प्रणाम करे। श्री गुरु प्रणाम मन्त्र जैसे—

ॐ अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवेनमः॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुगुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवेनमः॥

श्रीकृष्णजी का प्रणाम मन्त्रः—

हे कृष्ण करुणासिन्धो दीनबन्धो जगत्पते।
गोपेश गोपिकाकान्त राधाकान्त नमोऽस्तुते॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः॥
कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनमः॥
पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसंभवः।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो हरिः॥'

श्री राधिका प्रणाममन्त्र यथा—

नवीनां-हेम-गौराङ्गीं पूर्णानन्दवतीं सतीम्।
वृषभानुसुतां देवीं वन्दे राधां जगत्प्रसूम्।

उसके बाद दरवाजा खोल कर श्रीभगवान का उत्थापन करना चाहिए। हाथ जोड़ कर इस मन्त्र का पाठ करे यथा—

ॐ उत्तिष्ठोत्तिष्ठगोविन्द उत्तिष्ठगरुड़ध्वज।
उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रैलोक्यमङ्गलं कुरु॥"

उसके बाद निम्नलिखित मन्त्र पाठ करते-करते घन्टावादन करना चाहिए। मन्त्र यथा:—

"ॐ सर्ववाद्यमयी घन्टा देवदेवस्य वल्लभा।
तन्निनादेन सर्वेषां शुभं भवति शोभने॥"

उसके बाद, शंख जल से आचमनीय देवें। मन्त्र यथा:—

ॐ इदमाचमनीयं ॐ नमस्तेबहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा। बाद में धौतवस्त्र दिखा कर सोचे मैं भगवान का मुख पोंछ रहा हूँ। इसके बाद मक्खन मिसरी लड्डू या पेड़ा इत्यादि यथासम्भव भोग देवे।

नैवेद्य के ऊपर दश बार इष्टमंत्र जप कर उसमें विष्णुदैवत साक्षात्भगवतस्वरूप ज्ञान करना चाहिए, उसके बाद तुलसी से पूजा करनी चाहिए।

मन्त्र यथा:— ॐ एतत् तुलसीपत्रं ॐ नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा।

एक गिलास पानी में भी उसी प्रकार सब कुछ करें। तत्पर उभयपात्र हाथ में लेकर नैवेद्य एवं जल भगवान को निवेदन करना चाहिए। मन्त्र यथा:—ॐ इदं मिष्टान्नं पानीयोदकञ्च विष्णुदैवतं अमृतकल्पं ॐ नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा। उसके बाद भगवान के पास नीचे धर कर परदा डाल कर घन्टा बजाते-बजाते बाहर आयें एवं मनसा इस मन्त्र का पाठ करें:—

ॐ ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना॥

उसके बाद वे भोगग्रहण कर रहे हैं यह ध्यान करते-करते १०८ बार इष्टमंत्र जप करना चाहिए। उसके बाद उनका भोग ग्रहण हो गया है, इस प्रकार ध्यान करके, मनसा दण्डवत् करके घन्टा बजा कर मन्दिर के अन्दर प्रवेश करें। "इदमाचमनीयम् ॐ नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा" इत्यादि मन्त्रों से आचमनीय एवं पुनराचमनीय देकर, वस्त्रप्रदर्शन कराकर मुख पोंछ रहे हैं इस प्रकार ध्यान करना चाहिए। उसके बाद पर्दा खोल कर उस प्रसाद को गरुड़जी को अर्पण करें और चक्षुमुद्रित करके इस मन्त्र को पाठ करे—

ॐ एतत् भगवत्प्रसादम् अमृतकल्पम् ॐ ग्रां ग्रीं ग्रूं ग्रैं ग्रः गरुड़ात्मने नमः, ॐ क्षिपः ॐ स्वाहा। तत्पर प्रसाद को महावीरजी को (हनुमानजी को) अर्पण करना चाहिए।

मन्त्र यथाः—ॐ एतत् भगवत्प्रसादम् अमृतकल्पम् ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं हः फट् स्वाहा। उसके बाद प्रसाद को श्री श्री दादा गुरुजी महाराज को श्री बाबाजी महाराज को एवं पूर्वाचार्यगण को अर्पण करें। मन्त्र यथाः ॥ ॐ एतत् भगवत्प्रसादम् अमृतकल्पम् ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ जहाँ हनुमान जी नहीं हैं, वहां हनुमान जी एवं गरुड़ जी को निवेदन नहीं करना होगा। एक ही साथ आसन में यदि हनुमान जी गरुड़जी एवं श्रीगुरुदेव की मूर्त्ति अथवा फोटो रहे तो इष्टदेवता ज्ञान से एक साथ ही भोग लगाने से ही काम चलेगा। अलग से उनको भोग लगाने की जरूरत नहीं। अर्थात् ॐ नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा, केवल इस मंत्र से निवेदन करने से ही काम चलेगा।

इसके बाद मंगलारति करेंगे। पहले दरवाजा बन्द कर धूप से आरति करें। मन्त्र यथाः—

ॐ "वनस्पतिरसोत्पन्नः सुगन्धाढ्यो मनोहरः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥"

इसके बाद दीप से आरति करें। मन्त्र यथा "ॐ घृतवर्तिसमायुक्तं तथा कर्पूर-संयुतम्। दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहम्।" तत्पर घन्टावादन करते हुए जलपूर्ण शंख से एवं धौतवस्त्र से क्रमशः संक्षेप में आरति कर दरवाजा खोल देवें। उसके बाद फिर से दीप से अच्छी तरह आरति उतारे, मन्त्र यथाः—चन्द्र सूर्य समज्योतिराकातारा समन्वितम्, शब्दभेर्यन्तिदेवेश गृहाणारात्रिकं प्रभो।" तत्पर पूर्ववत् जलपूर्ण शंख से धौतवस्त्र से क्रमशः आरति करे, चामर एवं पंखे डोलावें। प्रमाण यथा—

पञ्चनिराजनं कुर्यात् प्रथमं दीपमालया।
द्वितीयं सोदकाब्जेन तृतीयं धौतवाससा।
च्युताश्वथ्थ विल्वपत्रैश्चतुर्थं परिकीर्त्तितम्।
पञ्चमं प्रणिपातेन साष्टाङ्गेन यथाविधि ॥

इस स्थल पर विशेष ज्ञातव्य यह है कि जो, इस श्लोक में च्युत, अश्वत्थ एवं विल्वपत्र से आरति करने की बात कही गयी है उस स्थल पर, हम लोग चामर या मयूर पंखा या ताड़ के पंखों का डोलाने का प्रयोग करते हैं।

शंख जल से तीन बार आरति करना होता है। दो बार जल फेंक कर एवं अन्तिम बार जल न फेंक कर यह रख देवें एवं आरति शेष होने पर सभी के शिर एवं अपने शिर पर भी उस जल को छिड़कते हुए इस प्रकार जय कहे—श्री रामकृष्णदेव जी की जय, वृन्दावन विहारी जी की जय, शालग्रामदेव जी की जय, गोपाल जी की जय, अयोध्यानाथ जी की जय, नृसिंहदेव जी की जय, हनुमान गरुड़देव जी की जय, उमापति महादेव जी की जय, रमापति रामचन्द्र जी की जय, श्री सनकादि भगवान जी की जय, श्री नारद भगवान जी की जय, श्री निम्बार्क भगवान जी की जय, श्री श्री निवासाचार्य

जी की जय, द्वादश आचार्य जी की जय, अष्टादश भट्टन की जय, श्री हरिव्यास देवाचार्य जी की जय, श्री स्वभूराम देवाचार्य जी की जय, श्री चतुरचिन्तामणि देवाचार्य जी (नागा जी) की जय, गंगा भागीरथी की जय, यमुना महारानी की जय, श्री स्वामी रामदास काठिया बाबा जी की जय, श्री स्वामी बाबा जी महाराज जी की जय, सब सन्तन और भक्तन की जय, आपने-आपने गुरुगोविन्द की जय, (जब जैसी आरति होगी उसी आरति का जय कहना होगा) (जैसे मङ्गलारति की जय) जय-जय श्रीगोपाल।

उसके बाद मङ्गलारति स्तोत्र (बाद में देखें) पाठ कर साष्टाङ्ग दण्डवत प्रणाम करें।

आरति करने का नियम—

पैर में ४ बार, नाभि में २ बार, मुखमण्डल में १ बार आरति सर्वाङ्ग में ७ बार, हमारे आश्रम में मुखमण्डल में एक बार ही किया जाता है, किन्तु मतान्तर में बहुत जगह मुखमण्डल में तीन बार आरति करने की व्यवस्था है। प्रमाण यथा:—

"आदौ चतुष्पाद तले च विष्णोः।
द्वौ नाभिदेशे मुखमण्डलैकम्॥
सर्वेषु चाङ्गेष्वपि सप्तवारम्।
आरत्रिकं भक्तजनस्तु कुर्यात्॥"

इसके बाद पूजा के उपकरण समूह संग्रह करके एवं चन्दन घीस कर बाद में आसन शुद्धि करें। प्रथमतः आसन को ओं आधार शक्तये कमलासनायनमः मन्त्र से धेनु मुद्रा दिखा कर पूर्व मुख या उत्तर मुख कर आसन पर बैठें। उसके बाद आसन स्पर्श करके यह मन्त्र पाठ करें:—

यथा:—ॐ आसन मन्त्रस्य मेरु पृष्ट ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनोपवेशने विनियोगः। ॐ पृथ्वीत्वयाधृता लोका देवित्वं विष्णुना धृता, त्वञ्चधारय मां नित्यं पवित्रं कुरुचासनम्॥

भूतशुद्धिः—हृदय में केवल श्रीकृष्ण जी का ध्यान करने से ही भूतशुद्धि होगी और कुछ करने का प्रयोजन नहीं है। प्रमाण यथा:—

'स्वकीयहृदये ध्यायेत् श्रीकृष्णचरणाम्बुजम्।
भूतशुद्धिमिमां प्राहुः सर्वागमविशारदाः॥'

तत्पर अपने को भगवदङ्गीभूत चिदंशमात्र, उनसे अभिन्न इस ज्ञान से चन्दन तुलसी से "ॐ नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा" इस मन्त्र से या केवल अपने इष्ट मंत्र से अपने मस्तकों पर पूजा करें।

पश्चात् हाथ में एक सचन्दन पुष्प लेकर अपने इष्टदेव का ध्यान करके (ध्यान मंत्र यथा— ध्यान माला देखें) उस पुष्प को इष्टदेव की मूर्त्ति या फोटो में "ॐ नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा" मंत्र द्वारा अर्पण करें।

हस्तरूप अङ्ग का जैसे कोई स्वातन्त्र्य नहीं है, यह संपूर्ण रूप से अङ्गी के अधीन है, अङ्गी हाथ को जब जैसे रखता है, वह अर्थात् उसी रूप में रहता है, तद्रूप भगवदुपासक भी भगवान का अङ्ग, है उसकी अपनी कोई स्वतन्त्रता नहीं है, वह सम्पूर्ण रूपेण भगवान का है, पूजा के समय हमेशा इस प्रकार ध्यान करना चाहिए।

ततः अपने सम्मुख के बाम भाग भूमि में त्रिभुज बना कर उनका चतुर्दिक वृत्त एवं उनके चतुर्दिक चतुष्कोणमंडन जल से अंकित करके उस स्थान को गन्धपुष्प से पूजा करना चाहिए। मन्त्र जैसे—

ॐ एते गन्धपुष्पे "ॐ नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा।" उसके बाद उस मंडल के ऊपरत्रिपदी रख कर उसमें शंख स्थापन करके उसी को पहले प्रणाम करें। प्रणाम मंत्र जैसे – त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः पुरा। नमन्ति सर्व-देवास्त्वां पाञ्चजन्य नमोऽस्तुते॥" दूसरे रूप में प्रणाम मंत्र जैसे—

त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे।
मानितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य नमोऽस्तुते॥
तव नादेन जीमूता वित्रस्यन्ति सुरासुराः।
शशांकायुतदीप्ताभे पाञ्चजन्य नमोऽस्तुते॥
गर्भा देवारिनारीणां विलीयन्ते सहस्रधा।
तव नादेन पाताले पाञ्चजन्य नमोऽस्तुते॥

उसके बाद तुलसी एवं चन्दन पुष्प से शंख की पूजा करे। सचन्दन तुलसी एवं पुष्प से पूजा करने का मंत्र—

ॐ एतत् सचन्दन तुलसीपत्रम् "ॐ नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा।" उसके बाद शंख को इष्टमंत्र से जलपूर्ण करें एवं उस जल को सचन्दन तुलसी एवं पुष्पों से पूजा करें। मन्त्र पूर्ववत् (सकल पूजा के मन्त्र इसी प्रकार होंगे कारण सभी तो श्रीभगवान ही हैं)। उसके बाद शंख का जल शुद्ध करेंगे। अंकुश मुद्रा से जल आलोडन करते हुए निम्नलिखित मन्त्र पाठ करें। यथा—

ॐ गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धो कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥
"ॐ कुरुक्षेत्रं गया गंगा प्रभास पुष्कराणि च।
तीर्थान्येतानि पुण्यानि पूजाकाले भवन्तिह॥

उसके बाद उस जल से समस्त पूजा सामग्रियों को शुद्ध करें एवं जल पात्र में भी इस जल को कुछ मिलावें, उसके बाद, पाद्य अर्घ्य अर्पण करें। पाद्यार्पण मंत्रः—

ॐ स्नानार्थमुष्णतोयानि पुष्पगन्धयुतानि च।
पाद्यं गृहाण देवेश भक्तानुग्रहकारक॥"

अर्घ्यदान मंत्र—

"ॐ शंखतोयं समानीतं गन्धपुष्पादिवासितम्।
अर्घ्यं गृहाण देवेश प्रीत्यर्थं मे सदा प्रभो॥

उसके बाद भगवान को स्नान करावें।

शालग्राम स्नान कराने पर स्नान कराने के पात्र में चन्दन से अष्टदल पद्म अङ्कित कराकर उसके ऊपर उलट कर कुछ तुलसी पत्र रख कर उस तुलसी के ऊपर उनको सुगन्धित तेल या गव्यघृत लगा कर बैठायें। श्री श्री गुरुदेव एवं श्री श्री राधाकृष्ण प्रभृति फोटो स्थल में उनको स्नान करा रहे हैं ऐसा ध्यान कर ताम्र पात्र में शंखस्थ जल से घण्टावादन करते हुए "ॐ सहस्रशीर्षा" इत्यादि निम्नलिखित मन्त्रों से स्नान करावें। वे सर्वरूपी एवं सर्वव्यापी, चिदानन्दमय, भक्तों के कल्याण हेतु यह रूप धारण करके पूजा ग्रहण कर रहे हैं, यह ध्यान करते-करते उसके ऊपर १० बार इष्टमंत्र जप करना चाहिए एवं सुगन्धिपुष्प रहने से २-१ पुष्प से निम्नलिखित मंत्र द्वारा स्नान करावें। मन्त्र यथा—

"ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥

तत्पर शालग्रामजी या मूर्ति या फोटो जो भी हो उसे बोध कर भगवच्चरणों में चन्दन एवं तुलसीपत्र अर्पण करें। मंत्र यथा—एतत् सचन्दन तुलसीपत्रम् ॐ "नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा" शालग्रामजी होने पर उसे पोछ कर ऊपर एवं नीचे से चन्दन तुलसी देवे। पहले वाले उलट कर, ख्याल रखना होगा समतल हिस्सा शालग्राम जी में संलग्न रहें। ऊपर में भी उल्टे रहे, ख्याल रखना होगा जिससे पीछे के हिस्से शालग्राम जी में संलग्न रहे। उसके बाद शालग्राम जी को यथा स्थान में रखें। तत्पर गुरुदेव की पूजा करें। (विशेष रूप से गुरुपूजा पुस्तक अन्तिम भाग में द्रष्टव्य)। गन्धपुष्प, तुलसीपत्र प्रभृति से पूजा करें।

मन्त्र यथा:—एष गन्धः ॐ ऐं श्रीगुरवे नमः।
एतत् सचन्दन तुलसी पत्रम् ॐ ऐं श्री गुरवेनमः॥
एष धूपः ॐ ऐं श्री गुरवेनमः।
एष दीपः ॐ ऐं श्री गुरवेनमः॥

तत्पर हाथ जोड़ कर श्री गुरूजी को प्रणाम करें। मन्त्र यथा—

ॐ अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवेनमः॥
ॐ अज्ञान तिमिरांधस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥

ॐ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्री गुरवेनमः ॥

तत्पर विग्रहादि का शृंगार करें (कपड़ा एवं पोशाक धारण करावें) ।

पश्चात् चन्दन तुलसी एवं पुष्पादियों से शालग्राम जी एवं युगल विग्रहादि का पूजा करें ।

एष गन्धः ॐ नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा ।
एतत् सचन्दन तुलसीपत्र ॐ नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा ।
एतत् सचन्दन पुष्पम् ॐ नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा ।
एषः धूपः ॐ नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा ।
एषः दीपः ॐ नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा ।

पुष्पदान का और भी विशेष मंत्र जैसे—

"ॐ नानाविधानि पुष्पाणि ऋतुकालोद्भवानि च ।
मयार्पितानि सर्व्वाणि पूजार्थं प्रति गृह्यताम् ।"

उसके बाद बालभोग निवेदन करें। उसकी प्रणाली मंगलारति समय के भोग निवेदन जैसी ही है । तत्पर आचमनीय एवं पुनराचमनीय पहले जैसे देकर वस्त्र (रुमाल या छोटे अंगुछे) प्रदर्शन कराकर, मुख पोंछ रहे हैं ऐसा ध्यान करें ।

अतः पर शृंगारारति करें। उसकी प्रणाली भी मंगलारति के अनुरूप । तत्पर मंगलारति के अनुरूप जय कह कर श्री रामचन्द्र सम्बन्धीय एवं श्रीकृष्ण सम्बन्धीय प्रातःकालीन स्तुति पाठ करके, इस प्रकार कीर्त्तन करें ।

(स्तुति इस अध्याय के शेष भाग में देखें)

यथाः—जय राधेश्याम राधेश्याम राधेश्याम जय श्याम श्याम ।
जय सीताराम सीताराम सीताराम जय सीयावर राम ।

इसके बाद साष्टाङ्ग दण्डवत्, प्रणाम एवं परिक्रमा करें । परिक्रमा (प्रदक्षिणा) मंत्र—

"ॐ उपचारः समस्तेस्तु यावत् पूजा मया कृता ।
तत् सर्वं पूर्णतां यातु प्रदक्षिणा प्रभावतः ॥
"यानि कानि च पापाणि ब्रह्महत्या शतानि च ।
तानि सर्व्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिणा पदे पदे ॥"

प्रणाम एवं प्रदक्षिणा सम्बन्ध में विशेष ज्ञातव्य विषय यह है कि, दो पैर, दो हाथ, दो जाँघे, वक्ष एवं मस्तक धरती पर रख कर प्रणाम करने को पंचाङ्ग प्रणाम कहते हैं । विष्णु को बायें रख कर, शक्ति एवं शिव को दक्षिण में रख कर एवं श्री गुरुजी को सम्मुख रख कर प्रणाम करना चाहिए । स्त्रियों को साष्टाङ्ग प्रणाम नहीं करना चाहिए उन्हें पंचाङ्ग प्रणाम करना होगा।

देवताओं को दक्षिण ओर रख कर स्त्री देवता को एक बार सूर्य को सात बार, गणेशजी को तीन बार, विष्णु को चार बार, शिव को अर्धचन्द्राकृति भाव से प्रदक्षिणा करना चाहिए। प्रदक्षिणा के बाद चरणामृत एवं प्रसाद ग्रहण करें। विष्णु चरणामृत पान के लिए मंत्र—

"ॐ अकालमृत्युहरणं सर्व्वव्याधि विनाशनम्।
विष्णोः पादोदोदकं पीत्वा शिरसाधारयाम्यहम्॥"

द्विप्रहर का भोग (राज भोग) निवेदन प्रणाली : (भोग के समय श्रीकृष्ण जी का हस्तस्थित बंशी एवं लाठि खोल रखें) अन्न भोग प्रस्तुत होने पर बालभोग के नियमानुसारेण निवेदन करना चाहिए। फिर इसमें कुछ पार्थक्य है। प्रथमतः शंख जल समस्त नैवेद्यों में तुलसी से छिड़के, उसके बाद आठ बार 'यं' यह वायुबीज मंत्र जप करके ध्यान करें—मानों अग्नि में वे समस्त दोष भस्मीभूत हो गये हों। उसके बाद 'वं' इस वरुणबीज को आठ बार जप करके ध्यान करें, तब सोचें मानो सभी नैवेद्य अमृतमय हो गये हों। उसके बाद दस बार इष्ट मंत्र नैवेद्य के ऊपर जप करे एवं पूर्ववत् विष्णुदैवत ज्ञान करके तुलसी से पूजा करें। उसके बाद ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा कह कर एक गण्डूष जल दें एवं तत्पर निवेदन करें। निवेदन मंत्र यथा—

ॐ इदं सघृतं सोपकरणमन्नं विष्णुदैवतममृतकल्पम् ॐ नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा।" तत्पर घण्टावादन करते हुए दरवाजा बन्द करके बाहर आयें। उस समय मन्त्र पाठ करें जैसे—

ॐ ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना॥"
"ॐ अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम्।
भक्ष्यभोज्यसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥"

अन्तःकरण से भोगग्रहण की प्रार्थना करते हुए मंत्र का पाठ करें एवं बाहर बैठ कर भगवान का भोग ग्रहण का ध्यान करते हुए १०८ बार इष्ट मंत्र का जाप कर मनसा प्रणाम करके, घण्टावादन करते हुए दरवाजा खोले एवं भीतर जाकर पुनः दरवाजा बन्द करके "ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा" कह कर शंख जल एक गण्डुष दे, एवं पूर्ववत् आचमनीय एवं पुनराचमनीय अर्पण करके मुख पोछने के उद्देश्य से अंगूछा दिखावें। तत्पर भोग हटाकर बालभोग का प्रसाद निवेदन के जैसे पहले गरुड़जी उसके बाद क्रमशः हनुमान जी गुरू परम्परा एवं श्रीयुक्त बाबाजी महाराज को प्रसाद निवेदन करें, एवं श्री ठाकुर मन्दिर परिष्कार करके पान निवेदन करें, मन्त्र जैसे—

ओं नागवल्लीदलं दिव्यं पूगी कर्पूर संयुतम्।
वक्त्रं सुरभिकृत् स्वादु ताम्बुलं प्रतिगृह्यताम्॥

पश्चात् अपराध क्षमा प्रार्थना करें—यथा

"ओं मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवदीनं मामात्मसात् कुरु ॥
ओं अपराध सहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशंमया ।
तानि सर्वाणि मे देव क्षमस्व मधुसूदन ॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।"
पूजाञ्चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वर ।"

अपने वृन्दावनस्थ गुरु कुल रोड "काठिया बाबा का स्थान आश्रम" में राजभोग के बाद आरति करते हैं । उसको प्रणाली भी मंगलारति जैसी ही है । उसके बाद शयन देवें । मन्त्र यथा—

"ओं क्षीरसागर मध्ये च शेषशय्या महाशुभा ।
तस्यां स्वपिहि देवेश कुरु निद्रां जगत्पते ।।"

फिर शाम ४ बजे उत्थापन एवं सामान्य फल; मिष्ठि या सरबत इत्यादि यथा सामर्थ्य निवेदन करें । यह भी प्रातःकाल के उत्थापन एवं भोग निवेदन जैसे । तत्पर सन्ध्याकाल में सन्ध्यारति मंगलारति के नियम से करके सन्ध्याकालीन स्तुति (आगे के अध्याय देखें) करके राधेश्याम इत्यादि, कीर्त्तन करें । रात में शयन से पूर्व कुछ फल मिठाई, दूध, लावा या पूरी सब्जी जिसकी जैसी सामर्थ्य हो भोग दें । फल मिठाई इत्यादि होने पर प्रातःकालीन भोगनिवेदन जैसे, और अन्नभोग होने पर दोपहर के राजभोग जैसे निवेदन करें । हमारे वृन्दावनस्थ आश्रम में शयन से पूर्व शयनारति होती है । उसकी पद्धति भी मंगलारति जैसी है । अर्थात् आश्रम में ५ बार आरति करते हैं यथा—१. मंगलारति २. श्रृंगारारति ३. राजभोग आरति ४ सन्ध्यारति ५. शयन आरति । किन्तु गृहस्थ भक्त श्रृंगारारति एवं सन्ध्यारति अवश्य करें और आरति संभव न होने पर न करने पर भी चलेगा । उसके बाद अपराध क्षमा प्रार्थना एवं आत्मसमर्पण का मंत्र पाठ करके दोपहर की विधि से शयन देवें ।

क्षमा प्रार्थना एवं आत्मसमर्पण मन्त्र "ओं अपराध सहस्र संकुलं पतितं भीम-भवार्णवोदरे । अगतिं शरणागतं हरे, कृपया केवलं आत्मसात् कुरु ।" ओं इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेह धर्माधिकारतो जाग्रत स्वप्नसुषुप्तावस्थासु मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्नायत् स्मृतं यद् यदुक्तं यत् कृतं तत् सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा, मां मदीयं सकलं सम्यक् श्रीकृष्णाय समर्पयामि । ओं तत्सत् ।

तुलसी चयन मन्त्र

ओं तुलस्यामृत जन्मासि सदा त्वंकेशव प्रिया ।
केशवार्थे चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने ॥

त्वदङ्ग संभवे पत्रे पूजयामि यथा हरिम् ।
तथा कुरु पवित्राङ्गि कलौ मल विनाशिनि ।"

तुलसी वृक्ष में जल देने का मन्त्र

ओं गोविन्दवल्लभां देवीं भक्त-चैतन्य-कारिणीम् ।
स्नापयामि जगद्धात्रीं विष्णुभक्ति प्रदायिणीम् ॥

बिना स्नान किये तुलसीपत्र-चयन एवं पूजा निषिद्ध है । स्नान न करके तुलसी पत्र चयन एवं पूजन करने से निष्फल होता है प्रमाण यथा—

"अस्नात्वा तुलसींछित्वा य पूजां कुरुते नरः ।
सोऽपराधी भवेत् सत्यं सर्वं निष्फलं भवेत् ॥"

संक्षिप्त पूजा विधि

जो लोग नौकरी करते हैं उनके लिए पूर्व वर्णित विधि से पूजा करना संभव नहीं होगा । अतः उनके लिए बहुत संक्षेप में पूजा विधि लिख रहा हूँ ।

पहले स्नान एवं इष्ट मंत्र जप करके विष्णुगृह में प्रवेश करें एवं मन्दिर परिष्कार करें अर्थात् मन्दिर में पोंछा लगायें, पूजा के जल, नैवेद्य प्रभृति यथास्थान रखें । नैवेद्य कुछ मिठाई द्रव्य अथवा फल रखने से ही चल सकता है । तत्पर धूप एवं दीप जलायें । अनन्तर श्रीभगवान जी का सम्मुख दण्डायमान होकर हाथ जोड़ कर निम्नलिखित मंत्र पाठ करके उनका उत्थापन करे: —

"ओं उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुड़ध्वज ।
उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रैलोक्यमङ्गलं कुरु ॥"

उसके बाद आचमनीय प्रदान करके उनको कुछ मिठाई एवं पानीय जल निवेदन करें । मिष्टद्रव्य एवं पानीय जल के ऊपर इष्ट मंत्र १० बार जाप करके उसे भगवान के इष्टमन्त्र से ही निवेदन करें । उसके बाद इष्टमन्त्र से ही धूप दीप प्रदर्शन करें । अनन्तरः—

"ओं सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥"

इस मन्त्र से स्नान करावे । चित्रपट होने से अंगुछे भींगा कर उस मन्त्र से ही पोंछ दें । तत्पर इष्टमंत्र से चन्दन, तुलसी एवं पुष्प अर्पण करके पूर्वोक्त प्रकार से कुछ भोग दें एवं धूप दीप इत्यादि से आरति करें । उसके बाद स्तुति पाठ करके आत्म-निवेदन पूर्वक पूजा के दोष क्षमा करने के लिए मनसा-प्रार्थना करके प्रदक्षिणा के साथ साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करें । इस प्रकार भक्ति से पूजा करने पर भी श्रीभगवान प्रसन्न होंगे ।

मंगलारति स्तोत्रम्

ॐ नमो विश्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे ।।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमोनमः ।।१।
नमो विज्ञानरूपाय परमानन्दरूपिणे ।
कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमोनमः ।।२।।
नमः कमलनेत्राय नमः कमलमालिने ।
नमः कमलनाभाय कमलापतये नमः ।।३।।
वर्हापीड़ाभिरामाय रमायाकुण्ठमेधसे ।
रमामानसहंसाय गोविन्दाय नमोनमः ।।४।।
कंसवंशविनाशाय केशिचाणुरघातिने ।
वृषभध्वजवन्द्याय पार्थसारथये नमः ।।५।।
वेणुवादनशीलाय गोपालायहिमर्दिने ।
कालिन्दी कूललोलाय लोलकुण्डलधारिणे ।।६।।
वल्लवीनयनाम्भोज–मालिने नृत्यशालिने ।
नमः प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमोनमः ।।७।।
नमः पापप्रणाशाय गोवर्द्धनधराय च ।
पूतना जीवितान्ताय तृणावर्तासुहारिणे ।।८।।
निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धवैरिणे ।
अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमोनमः ।।९।।
प्रसीदपरमानन्द प्रसीद परमेश्वर ।
आधिव्याधिभुजङ्गेन दष्टं मामुद्धर प्रभो ।।१०।।
श्रीकृष्ण रुक्मिणीकान्त गोपीजनमनोहर ।
संसार सागरे मग्नं मामुद्धर जगद्गुरो ।।११।।
केशवक्लेशहरण नारायण जनार्दन ।१२।।
गोविन्दपरमानन्द मां समुद्धरमाधव ।।

श्रीरामचन्द्र जी की प्रातःकालीन स्तुति

भये प्रगट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी ।
हरषित महतारी मुनिमनहारी अद्भुतरूप नेहारी ।।
लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निजआयुधभुजचारि ।
भूषण वनमाला नयनविशाला शोभासिन्धु खरारि ।।
कह दुहुँ करजोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करौं अनन्ता ।।
मायागुण ज्ञानातीत अमाना वेद पुराण भनन्ता ।।

करुणासुखसागर सबगुण आगर येहि गावहिंश्रुतिसन्ता ।
सो मन हितलागि जनअनुरागी भये प्रगट श्रीकन्ता ॥
ब्रह्माण्डनिकाया निरमित माया रोम-रोम प्रतिवेद कहै ।
मम उर सो वासी इह उपवासी सुनत धीर मति थिर न रहै ॥
उपजा जब ज्ञाना प्रभु मुसुकाना चरित बहुविधि कीन्ह चहै ।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुन प्रेम लहै ॥
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा ।
कीजै शिशु लीला अति प्रियशीला यह सुख परम अनूपा ॥
सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना होई बालक सुर भूपा ।
इह चरित गावजे हरिपद पावहि तेन पहिरई भवकूपा ॥ (३ बार)

विप्रधेनु सुरसन्तहित लीन्ह मनुज अवतार ।
निज इच्छा-निरमित तनु माया गुण गोपाल ॥

श्रीकृष्ण जी की प्रातःकालीन स्तुति

भये प्रगट गोपाला दीनदयाला यशोमती के हितकारी ।
हरषित महतारी रूप नेहारी मोहनमदनमुरारि ॥
कंसासुर जाना मने अनुमाना पूतना वेगि पठायि ।
तेहि हरषित धायि मन मुसुकायी गेई जहाँ यदुरायि ॥
तेहिं यायि उठायि हृदय लगायि पयोधर मुख में दीन्ह ।
तब कृष्ण-कन्हाइ मनमुसुकायी प्राण ताको हरिलीन्ह ॥
जब इन्द्र रिषाये मेघन लाये वश करे ताहे मुरारि ।
गौअन हितकारि सुरमनहारी नख पर गिरिवरधारी ॥
कंसासुर मारो अति अहङ्कारो वत्सासुरे संहारो ।
वकासुर आय बहुत डगाय ताको वदन विदारो ॥
तेहि अति दीन जानि प्रभु चक्रपाणि ताहे दीन्ह निजलोका
ब्रह्मासुर आयो अति सुख पायो मगन भये गये शोका ॥
इह छन्द अनूपा है रसरूपा यो नर इहाकोगावये ।
तेहि सम नहि कोइ त्रिभुवने सोहि मनोवाञ्छित फल पावये ॥ (३ बार)

नन्द यशोदा तप कियौ मोहन से मन लाय ।
देखन चाहत बालमुख रहो कछुक दिन जाय ॥
जो नक्षत्र मोहन भये सो नक्षत्र पर आय ।
चारि वधायि रीति सब करोति यशोदामायि ॥

राधावर कृष्णचन्द जी की जय, विनतासुत गरुड़देवजीकी जय, पवनसुत हनुमान जी

की जय, उमापति महादेव जी की जय, रमापति रामचन्द्र जी की जय, वृन्दावन कृष्णचन्द्र जी की जय, ब्रजेश्वरी राधारानी की जय, बोलो भाई सब सन्तन की जय, अपना आपनि गुरुगोविन्द की जय, शृंगार आरति की जय; जय-जय श्री गोपाल।

सन्ध्याकालीन स्तुति

हे राम पुरुषोत्तम नरहरे नारायण केशव
हे गोविन्द गरुड़ध्वजगुणनिधे दामोदर माधव ॥
हे कृष्ण, कमलापते यदुपते सीतापते श्रीपते
हे वैकुण्ठाधिपते चराचरपते लक्ष्मीपते पाहिमाम् ॥
हे गोपालक हे कृपाजलनिधे हे सिन्धुकन्यापते
हे कंसान्तक हे गजेन्द्र करुण पाहिनो हे माधव ॥
हे रामानुज हे जगत्त्रयगुरो हे पुण्डरीकाक्षमाम्
हे गोपीजननाथ पालय परं जानामि न त्वां विना ॥
कस्तुरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभम्
नासाग्रे-गजमौक्तिकं करतले वेणुः करे कंकणम् ॥
सर्वांगे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावलि
गोपस्त्री परिवेष्टितो विजयते गोपालचूड़ामणिः ॥
आदौ रामतपोपनादिगमनं हत्वा मृगं काञ्चनम्
वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसंभाषणम् ॥
बालिनिग्रहणं समुद्रतरणं लङ्कापुर दहनम्
पश्चात् रावण कुम्भकर्ण हननं एतत् श्रीरामायणम् ॥
आदौ देवकीदेवगर्भजननं गोपीगृहे वर्द्धनं
माया पूतना जीवतापहरणं गोवर्द्धनधारणम् ॥
कंसच्छेदनं कौरवादिहननं कुन्तीसुतपालनम्
एतत् श्रीमद्भागवतपुराणकथितं श्रीकृष्णलीलामृतम् ॥
(श्रीरङ्गम् करिशैलमञ्जितगिरौ शेषाचल सिंहासन र्
श्रीकूर्म्मं पुरुषोत्तमञ्चबद्रीनारायणं नरसिंहम् ॥
श्रीमद्वारावती प्रयागो मथुरा अयोध्या गया पुष्करम्
शालग्रामे निवसते विजयते रामानुजो हि मुनिः ॥
विष्णु पद्यवन्तिका गुणवती मध्ये च काञ्ची पुरी
नाभौ द्वारावती तथा च हृदये मायापुरी पुण्यदा ॥
ग्रीवामूलमुदाहरन्ति मथुरा नासाग्रे वाराणसी
एतद् ब्रह्मविदो वदन्ति मुनयोऽयोध्यापुरी मस्तके ॥

तूनेनैकशरं करेण दशधा सन्धानकाले शतम्
चापे भूप सहस्रलक्षगमनं कोटिस्कोटिरविधिः ॥
अन्ते अर्ब्बुद-खर्व बाण विविधैः सीतापतिः शोभितः
एतद् बाण पराक्रमश्च महिमा सत्पात्रे दानं यथा ॥)
पार्थाय प्रतिबोधितां भगवतानारायणे न स्वयं
व्यासेन ग्रथितां पुराण मुनिनां मध्ये महाभारते ॥
अद्वैतामृतवर्षिणीं भगवती मष्टादशाध्यायिणी
मम्बत्वामनुसन्दधामि भगवद्गीते भवद्वेषिणीम् ।

नमोऽस्तुते व्यास विशालबुद्धे
फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ।
येन त्वया भारत-तैलपूर्णः
प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ॥

(श्रीरामचन्द्र कृपालं भज मनोहरणं भवभयवारणम् ।
नवकञ्जलोचनं कञ्जमुखकरं कञ्जपदं कञ्जारुणम् ॥
कन्दर्पमगणितममितञ्चाभिनवनीरजसुन्दरम् ।
पट्टपीतवासं तड़ितरुचिः शुचिः नौमि जनकसुतावरम् ॥
शिरे किरीट कुण्डलं तिलकचारुदारअङ्गविभूषणम् ।
आजानुभुजशरचापधरं संग्रामजितखरदूषणम् ॥
भज दीनबन्धुदीनेश-दानव-दैत्यवंशनिकन्दनम् ।
रघुनन्द - आनन्दकन्द - कौशलचन्द्रं - दशरथनन्दनम् ॥
इति वदति तुलसीदास शंकरशेषमुनि मनरंजनम् ।
मम हृदय कण्ज निवास कुरु कामादिखलदलगञ्जनम् ॥
मन जाहे राचों मिलहिं सो वर सहज सुन्दर साँवरो ।
करुणानिधान सुजान शील सनेह जानत रावरो ॥
एहि भाँति गौरी आशीश सुनि सीयासहित हियाहरषित अलि ।
तुलसी भवानी पूजि पुनि-पुनि मुदित मन मन्दिर चली ॥
जानि गौरी अनुकूल सीया हिया हर्ष न जात कहइ ।
मंजूल मंगल मूल वाम अंग फरकन लगे ॥
मोसम दीन न, दीनहित तुम समान रघुवीर ।
अस विचारी रघुवंश मणि हरउ विषम भवभीर ॥
कामी नारि पियारि जिमि लोभी के प्रिय दाम ।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहुँ मोहे राम ॥

प्रणतपाल-रघुवंशमणि करुणासिन्धु खरार ।
गये शरण प्रभु राखिहो सब अपराध विसार ॥
श्रवणे सुयश-सुनि आयि हो प्रभु भंजन भवभीर ।
त्राहि त्राहि आरति हरण शरण सुखद रघुवीर ॥
अर्थ न धर्म न काम रुचि गति न चाहुँ निर्वाण ।
जन्म जन्म सीयारामपद इह वर दान न आन ॥
बार बार वर माँगिहुँ हरषि देव श्रीरङ्ग ।
पद सरोज अनपायिनी भक्ति सदा सत्संग ॥
वरणे उमापति रामगुण हरषे गये कैलास ।
तबहु प्रभु कपिन दिखायो सब विधि सुख प्रदवास ॥
एक मन्द मैं मोहवश कीस हृदय-अज्ञान ।
पुनि प्रभु मोहे न बिसारिउ दीनबन्धु भगवान् ॥
मिनती करि मुनि नायि शिर कह कर जोड़ बहोर ।
चरण सरोज रघुनाथ जिमि कबहु न त्यजे मतिमोर ॥
नहि विद्या नहि बाहुबल नहि दरसन को दाम ।
मो सम पतित पतङ्ग की तुम पति राखहु राम ॥
चलो सखि तहाँ जाइये जहाँ बसे व्रजराज ।
गोरस बेचत हरि मिलैं एकपन्थ दोउ काज ॥
व्रजचौरासी कोशमैं चारिग्राम निजधाम ।
वृन्दावन अरु मधुपुरी वर्षाणे नन्दग्राम ॥
वृन्दावन से वन नहि नन्दग्राम से ग्राम ।
वंशीवट से वट नहि श्रीकृष्ण नाम से नाम ॥
एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध ।
तुलसी सङ्गति साधु की हरे कोटि अपराध ॥

सीयावर रामचन्द्र जी की जय, अयोध्या रामजीलला की जय, हनुमान गरुड़देव जी की जय, उमापति महादेव जी की जय, रमापति रामचन्द्र जी की जय, वृन्दावन कृष्णचन्द्र जी की जय, व्रजेश्वरी राधारानी जी की जय, बोलो भाई सब सन्तन की जय, आपन आपनि गुरुगोविन्द की जय, सन्ध्या आरति की जय, जय जय श्रीगोपाल ।

प्रातःकालीन श्री सर्वेश्वर जी की स्तुति

जय जय सर्वेश्वर जय अखिलेश्वर जय भक्तन हितकारी ।
जय जय राधावर जय करुणाकर जय सन्तन दुखहारी ॥

हे भानुकुमारी हे हरिप्यारी चरण शरण गहि लीजे।
हे निकुञ्जविहारिणीं जनहितकारिणी अभयदान वर दीजे॥
हे दीन पियारे जन रखवारे व्रज जन प्राण अधारे।
कामादिक गंजन भवभय भंजन हरण सकल भयहारे॥
प्रभु कामरु क्रोधा प्रबल जु जोधा लोभ मोह भयकारी।
निशिदिन दुख देवे कल नहिं लेवे ताते रहत दुखारी॥
प्रभु ये सब चौरा भवन सुतोरा, निशिदिन लूट मचावें।
हरि वेगि पधारो मारि निकारो, बहुरि न आवन पावें॥
प्रहलाद सुदामा ध्रुव अभिरामा नृप अम्बरीष बचायो।
गजराज पुकारे आरत भारे, सुनत वेगी पग धायो॥
तिमि गति मम हाथा व्रजजननाथा निजजन जानि उबारो।
तुम बिन नहि कोई रक्षक होई विपति विदारण हारो॥
दोहा—दीन बन्धु करुणा अयन, अभिमत फल दातार।
हे प्रभु निज जन जानि के, वेगि करौ भवपार॥

श्री राधिका जी की स्तुति

प्रगटी श्री राधा रूप अगाधा सब सुख साधा नावे।
पुरवनि जन साधा मेटनि बाधा लखि रति कोटि लजावें।
आज भयो मंगल व्रज घर घर सब मिल मंगल गावें।
गोपीगोप भाग्य कीरति की गाय गाय प्रकटावें॥ १॥
सुर नर मुनि हरषे सुमनहि बरषे चढ़े विमाननि आवें।
प्रभुदिन मिल गावें लखि सुख पावें बाजे विविध बजावें।
नारद सनकादिक शिव ब्रह्मादिक भृगु आदिक मुनिजेता।
इन्द्रादिक जे जहें पुनि ते तह आये स्वजन समेता॥ २॥
सब मिलि करजोरे करत निहोरे जय जय भानुदुलारी।
जय कीतिकुमारी जय हरिप्यारी जय जय सुखदाती।
हे नित्य किशोरी प्रियचित चोरी यह विनती सुनि लीजे।
व्रजवास हि दीजे वसि रसपीजे चरण शरण गहि लीजें॥ ३॥
करजोरि मनाउ यह वरपाऊँ दम्पति यश नित गावउ।
पदकमल सु तोरा मधुप सु मोरा मन नित तहाँ बसाउ॥
एहि भांति सकल सुर अस्तुति करि करि निज निज धाम सिधावें।
मिलि आये नन्दादिक सब ही प्रेम परस्पर भावें॥ ४॥

कोइ एक गावें कोइ बजावें कोइ दही लैं धावें।
आय आय वरसाने वीथिन जय जयकार करावें।
भानु नन्दसों मिले धायके कण्ठ सों कण्ठ लगावें।
श्रीभट निकट निहारि, राधिका श्याम नयन सचुपावें ॥ ५ ॥

कुञ्जविहारिणी लाड़िली, कुञ्जविहारि हेत।
वरसाने प्रगटभई श्रीवृषभानु निकेत ॥
यह लीला अति रसमई गावें जो करिहेत।
श्री वृषभानुकुमारि जु चरण शरण निजदेत ॥

श्री राधावर कृष्णचन्द्र जी की जय

द्वितीय अध्याय

स्तुति

श्री गुरुदेव एवं भगवान में अभेद बुद्धि रखकर दोनों की ही स्तुति करनी चाहिए। मधुसूदन भगवान का बहुविध स्तोत्र से स्तुति करना चाहिए, जो यह करता है वह सर्वपाप से विमुक्त होकर विष्णु लोक में गमन करता है।

"स्तोत्रैर्बहुविधैर्देवं यः स्तौति मधुसूदनम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥ (नारसिंह)

स्तोत्र से मधुसूदन जितना सन्तुष्ट होते हैं, उतना बहुत धनादि के दान से भी सन्तुष्ट नहीं होते।

"न वित्तदाननिचयैर्बहुभिर्मधुसूदनः।
तथा तोषमवाप्नोति यथा स्तोत्रैर्द्विजोत्तमाः॥"

अतएव क्रमशः द्वितीय अध्याय में श्री गुरु एवं श्री भगवान के कुछ स्तोत्र दये जा रहे हैं। भक्ति युक्त मनुष्यों के लिए पुण्डरीकाक्ष भगवान का स्तवों से सदा अर्चना करना सर्वधर्मों में श्रेष्ठ धर्म हैं—

"एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा॥" महा भीषमपर्व

नित्य पूजा के बाद निम्नलिखित स्तोत्र घण्टा बजाते हुए पाठ करने से श्री गुरुदेव एवं इष्टदेव प्रसन्न होते हैं।

ॐ अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥
हृदयम्बुजे कर्णिकामध्यसंस्थं सिंहासने संस्थितदिव्यमूर्तिम्।
ध्यायेद् गुरुं चन्द्रकलावतंसं सच्चित्सुखाभीष्टवर प्रदानम्॥

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजबोधयुक्तम् ।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं श्री मद्गुरुं नित्यमहं भजामि ॥

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं ।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधी साक्षीभूतं ।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥
ध्यानमूलं गुरोमूर्ति पूजामूलं गुरोः पदं ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते पुरुषोत्तम ।
नमस्ते सर्वलोकात्मन नमस्ते तिग्मचक्रिणे ॥
नमोब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मण हिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥
ब्रह्मत्वे सृजते विश्वं स्थितौ पालयते पुनः ।
रुद्ररुपाय कल्पान्ते नमस्तुभ्यं त्रिमूर्त्तये ॥
देवायक्षासुराः सिद्धा नागा गन्धर्वकिन्नराः ।
पिशाचा राक्षसाश्चैव मनुष्याः पशवस्तथा ॥
पक्षिणः स्थावराश्चैव पिपीलिकाः सरीसृपाः ।
भूमिरापो नभो वायुः शब्दस्पर्शस्तथा रसः ॥
रूपं गन्धो मनो बुद्धिरात्माकालस्तथा गुणाः ।
तेषां परमार्थश्च सर्वमेतद् त्वमच्युत ॥
विद्याविद्ये भवान् सत्यमसत्यं त्वं विषामृते ।
प्रवृत्तञ्च निवृत्तञ्च कर्म वेदोदितं भवान् ॥
समस्तकर्म भोक्ता च कर्मोपकरणानि च ।
त्वमेव विष्णो सर्वाणि सर्वकर्मफलञ्चयद् ॥
मय्यन्यत्र तथाशेष भूतेषु भुवनेषु च ।
तवैव व्याप्तिरैश्वर्यगुणसंसूचिका प्रभो ॥
त्वां योगिनश्चिन्तयन्ति त्वां यजन्ति च यज्विनः ।
हव्यकव्यभुगेकस्त्वं पितृदेव स्वरूपधृक ॥

रूपं महत्ते स्थितमत्र विश्वं
ततश्च सूक्ष्मं जगदेतदीश ।
रूपाणि सर्वाणि च भूतभेदा,
स्तेष्वन्तरात्माख्यमतीव सूक्ष्मम् ॥

तस्माच्च सूक्ष्मादि विशेषनाना-
मगोचरे यत् परमात्मरूपम् ।
किमप्यचिन्त्यं तव रूपमस्ति,
तस्मै नमस्ते पुरुषोत्तमाय ॥

सर्वभूतेषु सर्वात्मन या शक्तिरपरा तव ।
गुणाश्रया नमस्तस्यै शाश्वतायै सुरेश्वर ॥
यातीता गोचरा वाचां मनसाञ्चाविशेषणा ।
ज्ञानिज्ञानापरिच्छेद्या तां वन्दे चेश्वरीं पराम् ॥
ॐ नमो वासुदेवाय तस्मै भगवते सदा ।
व्यतिरिक्तं न यस्यास्ति व्यतिरिक्तोऽखिलस्य यः ॥
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै महात्मने ।
नामरूपं न यस्यैको योऽस्तित्वेनोपलभ्यते ॥
यस्यावताररूपाणि समर्च्चन्ति दिवौकसः ।
अपश्यन्तः परं रूपं नमस्तस्मै महात्मने ॥
योऽन्तस्तिष्ठन्नशेषस्य पश्यतीशः शुभाशुभम् ।
तत् सर्वसाक्षिणं विष्णुं नमोऽस्तु परमेश्वरम् ॥
नमोस्तु विष्णवे तस्मै यस्याभिन्नमिदं जगत् ।
ध्येयः स जगतामाद्यः प्रसीदतु ममाव्ययः ॥

यत्रौतमेतत् प्रोतञ्च विश्वमक्षरमव्ययम् ।
आधारभूतः सर्वस्य स प्रसीदतु मे हरिः ॥
नमोऽस्तु विष्णवे तस्मै नमस्तस्मै पुनः पुनः ।
यत्र सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वसंश्रयः ॥
सर्वगत्वादनन्तस्य स एवाहमवस्थितः ।
मत्तः सर्वमहं सर्वं मयि सर्वं सनातने ॥
अहमेवाक्षरो नित्यः परमात्मात्मसंश्रयः ।
ब्रह्मसंज्ञोऽहमेवाग्ने तथान्ते च परः पुमान् ।
ॐ नमः परमार्थार्थ स्थूलसूक्ष्माक्षराक्षर ।
व्यक्ताव्यक्त कलातीत सकलेश निरञ्जन ।
गुणाञ्जन गुणाधार निर्गुणात्मन् गुणस्थिर ।
मूर्त्तामूर्त्त महामूर्त्ते सूक्ष्ममूर्त्ते स्फुटास्फुट ॥
करालसौम्यरूपात्मन् विद्याविद्यालयाच्युत ।
सदसद्रूपसद्भाव सदसद्भावभावन ॥

नित्यानित्य प्रपंचात्मन् निष्प्रपञ्चामलाश्रित ।
एकानेक नमस्तुभ्यं वासुदेवादिकारण ॥

यः स्थूलसूक्ष्मः प्रकटप्रकाशो
यः सर्वभूतो न च सर्वभूतः ।
विश्वं यतश्चैतदविश्वहेतो
नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥

देव प्रपन्नार्त्तिहर प्रसादं कुरु केशव ।
अवलोकनदानेन भूयो मां पावयाच्युत ॥
नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदात्वयि ॥
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥

अहं हरे ! तव पादैकमूल
दासानुदासो भवितास्मि भूयः ।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते
गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः ॥ (भाः ६।११।२४)

ॐ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम् ।
तत् सर्वं क्षम्यतां देवदीनं मामात्मसात् कुरु ॥
अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
तानि सर्वाणि मे देव क्षमस्व मधुसूदन ॥

अपराधसहस्र संकुलं
पतितं भीमभवार्णवोदरे ।
अगतिं शरणागतं हरे
कृपया केवलमात्मसात् कुरु ॥

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ।
त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥

ज्ञानञ्च शक्तिमपि धैर्यमथा विवेकं
तद्दत्तमेव सकलं लभते मनुष्यः ।
किं मेऽस्ति येन भवतो विदधामि चर्या ।
स्वेनैव तुष्यतु भवान् करुणागुणेन ॥

यदक्षरं परिभ्रष्टं मात्राहीनञ्च यद्भवेत् ।
पूर्णं भवतु तत् सर्वं तत् प्रसादात् जनार्दन ॥

ॐ गुरोः कृपाहि केवलम् ॐ गुरोः कृपाहि केवलम्,
ॐ गुरोः कृपाहि केवलम् ॥

गुरुस्तोत्रम्

ज्ञानात्मानं परमात्मानं दानं ध्यानं योगं ज्ञानम् ।
जानन्नपि तत् सुन्दरि मातर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ १ ॥

हे मातः सुन्दरि ! दान, ध्यान, योग, ज्ञान, ज्ञानात्मा परमात्मा, ये सब कुछ मूल्यवान जाने जाते हुए भी गुरु से श्रेष्ठ नहीं हैं ।

प्राणं देहं गेहं राज्यं भोगं मोक्षं भक्ति पुत्रम् ।
मन्ये मित्रं वित्तकलत्रं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ २ ॥

प्राण, शरीर, गृह, राज्य, भोगमोक्ष, भक्ति, पुत्र, मित्र कलत्र एवं वित्त ये सभी गुरु से श्रेष्ठ नहीं हैं ।

वानप्रस्थं यतिविधधर्मं पारमहंस्यं भिक्षुकचरितम् ।
साधोः सेवा बहुसुरभक्तिर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ३ ॥

वानप्रस्थ, यति का धर्म, परमहंस का धर्म, भिक्षुक चरित्र, साधु सेवा, बहुदेवभक्ति ये सब गुरु से श्रेष्ठ नहीं हैं, गुरु से श्रेष्ठ नहीं हैं ।

विष्णोर्भक्तिः पूजनचरितं वैष्णवसेवा मातरि भक्तिः ।
विष्णोरिव पितृसेवनयोगो न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ४ ॥

विष्णुभक्ति, विष्णुपूजा, वैष्णवसेवा, मातृभक्ति, विष्णुज्ञान में पितृसेवा ये सभी कुछ गुरु से श्रेष्ठ नहीं हैं गुरु से श्रेष्ठ नहीं है ।

प्रत्याहारं चेन्द्रियजयता प्राणायामं न्यासविधानम् ।
इष्टेः पूजा जपतपोभक्तिर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ५ ॥

प्रत्याहार, इन्द्रियजय, प्राणायाम न्यास, इष्टपूजा, जपतप भक्ति ये सब गुरु से अधिक नहीं है ।

कालीदुर्गा कमला भुवना त्रिपुरा भीमा बगला पूर्णा ।
श्रीमातङ्गी धूमा तारा एता विद्या त्रिभुवनसारा न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥६॥
काली, दुर्गा, कमला, भुवनेश्वरी, त्रिपुरा, भैरवी, बगला, मातङ्गी धूमावती एवं तारा ये दश महाविद्या त्रिभुवन का सार होने पर भी गुरु की अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं हैं ।

मात्स्यं कौर्म्यं श्रीवाराहं नरहरिरूपं वामनचरितम् ।
अवतारादिकमन्यत् सर्वं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ७ ॥

मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन ये सब अवतार एवं अन्य सभी गुरु से श्रेष्ठ नहीं हैं।

श्रीरघुनाथं श्रीयदुनाथं श्रीभृगुदेवं बौद्धं कल्किम् ।
अवताराणीति दशकं मन्ये न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ८ ॥

रघुनाथ, यदुनाथ (कृष्ण) भृगुराम, बुद्ध, कल्कि ये दशावतार गुरु की अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं है।

गङ्गा काशी काञ्ची द्वारा माया अयोध्यावन्ती मथुरा ।
यमुना रेवा परतरतीर्थं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ९ ॥

गंगा, काशी, काञ्ची, द्वारका, माया, अयोध्या, अवन्ती, मथुरा, यमुना, रेवा इत्यादि कोई भी उत्तम तीर्थ गुरु की अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं है।

गोकुलगमनं गोपुररमणं श्रीवृन्दावनमधुपुरमरणम् ।
एतत्सर्वं सुन्दरि मातर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ १० ॥

हे मातः सुन्दरि ! गोकुल में गमन, गोपुर में विहार, श्री वृन्दावन एवं मधुपुर की यात्रा ये सभी गुरु से बढ़कर नहीं हैं, गुरु की अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं हैं।

तुलसीसेवा हरिहरभक्तिर्गङ्गासागरसंगममुक्तिः ।
किमपरमधिकं कृष्णे भक्तिरेतत् सर्वं सुन्दरि मातर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥११॥

हे सुन्दरिमातः ! तुलसी सेवा, हरिहर में भक्ति, गंगासागर संगम में मुक्ति, अधिक क्या कृष्ण भक्ति भी गुरु अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ नहीं है।

एतत् स्तोत्रं पठति च नित्यं मोक्षज्ञानी सोऽप्यतिधन्यः ।
ब्रह्माण्डान्तर्यद्यद् ज्ञेयं सर्वं न गुरोरधिकम् ॥

मोक्षज्ञानी को भी प्रत्येक दिन इस सब का पाठ करना चाहिए, उससे वे और भी धन्य होंगे। ब्रह्माण्ड में जो कुछ पदार्थ है, कोई भी गुरु की अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं है, इस प्रकार जानें।

इति वृहतपारमहंस्यां संहितायां श्री शिवपार्वती संवादे श्री गुरु स्तोत्रं समाप्तम् ।
वृहतपारमहंसी संहिता के शिवपार्वती संवाद में यह गुरुस्तववर्णित है।

निम्बार्काचार्यविरचित-प्रातःस्मरण-स्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि युगकेलिरसाभिषिक्तं वृन्दावनं सुरमणीयमुदारवृक्षम् ।
सौरीप्रवाहवृतमात्मगुणप्रकाशं युग्माङ्घ्रिरेणुकणिकाञ्चितसर्व्वं सत्वम् ॥ १ ॥

प्रातः स्मरामि दधिघोषविनीतनिद्रं निद्रावसानरमणीयमुखानुरागम् ।
उन्निद्रपद्मनयनं नवनीरदाभं हृद्यानवद्यललनाञ्चितवामभागम् ॥ २ ॥
प्रातःभजामि शयनोत्थितयुग्मरूपं सर्वेश्वरं सुखकरं रसिकेशभूपम् ।
अन्योन्यकेलिरसचिह्नसखीदृगौघं सख्यावृतं सुरतकामनोहरञ्च ॥ ३ ॥
प्रातर्भजे सुरतसारपयोधिचिह्नं गण्डस्थलेन नयनेन च सन्दधानौ ।
रत्याद्यशेषशुभदौ समुपेतकामौ श्रीराधिकावरपुरन्दरपुण्यपुञ्जौ ॥ ४ ॥
प्रातर्धरामि हृदयेन हृदीक्षणीयं युग्मस्वरूपमनिशं सुमनोहरञ्च ।
लावण्यधाम ललनाभिरुपेयमानमुत्थाप्यमानमनुमेयमशेषवेषैः ॥ ५ ॥
प्रातर्ब्रवीमि युगलावपि सोमराजौ राधामुकुन्द पशुपालसुतौ वरिष्ठौ ।
गोविन्दचन्द्रवृषभानुसुतावरिष्ठौ सर्वेश्वरौ स्वजनपालनतत्परेशौ ॥ ६ ॥
प्रातर्नमामि युगलाङ्घ्रि सरोजकोशमष्टाङ्ग युक्तवपुषा भवदुःखदारम् ।
वृन्दावने सुविचरन्तमुदारचिन्हैंलक्ष्म्या उरोजधृत कुङ्कुमरागपुष्टम् ॥ ७ ॥
प्रातर्नमामि वृषभानुसुतापदाब्जं नेत्रालिभिः परिणुतं व्रजसुन्दरीणाम् ।
प्रेमातुरेण हरिणा सुविशारदेन श्रीमद्व्रजेशतनयेन सदाभिवन्दयम् ॥ ८ ॥
संचिन्तनीयमनुमृग्यमभीष्टदोहं संसारतापशमनं चरणं महार्हम् ।
नन्दात्मजस्य सततं मनसा गिरा च संसेवयामिवपुषाप्रणयेन रम्यम् ॥ ९ ॥

प्रातःस्तवमिमं पुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
सर्वकालं क्रियान्तस्य सफलाः स्युः सदा ध्रुवाः ॥ १० ॥

इति श्री भगवन्निम्बार्काचार्यविरचितं प्रातःस्तवं समाप्तम् ॥

श्रीराधाष्टकम्

हे राधे वृषभानुभूपतनये हे पूर्णचन्द्रानने,
हे कान्ते कमनीयकोकिलरवे वृन्दावनाधीश्वरि ।
हे मत्प्राणपरायणे च रसिके हे सर्वयूथेश्वरि,
मत्स्वान्तोच्चवरासने विश मुदा मां दीनमानन्दय ॥ १ ॥
हे श्यामे कलधौतकान्तिरुचिरे हे कीर्त्तिदेवीसुते,
हे गान्धर्वकलानिधेऽतिसुभगे हेसिन्धुकन्यार्च्चिते ।
हे कृष्णाननपंकजभ्रमरिके दामोदरप्रेयसि,
मत्स्वान्तोच्चावरासने विश मुदा मां दीनमानन्दय ॥ २ ॥
हे गौराङ्गि किशोरिके सुनयने कृष्णप्रिये राधिके ।
हे वामाक्षि मनोजमानदलने सङ्केतसंकेतिके ।

हे गोबर्धननाथचर्चितपदे हे गोपीचूड़ामणे ।
मत्स्वान्तोच्चवरासने विश मुदा मां दीनमानन्दय ॥ ३ ॥

हे वृन्दावननागरीगणयुते काश्मीरमुद्राङ्किते ।
रक्तालक्तकचर्चिताङ्घ्रिकमले हे चारुविम्वाधरे ।
मुक्तादामविभूषिताङ्गलतिके हे नीलशाटीवृते ।
मत्स्वान्तोच्चवरासने विश मुदा मां दीनमानन्दय ॥ ४ ॥
हे चन्द्रावलिसेविते सुललिते भद्रारमावन्दिते
पद्माचम्पकमालिकानुतपदे हे तुङ्गभद्राप्रिये ।
हे तन्वङ्गि मृगाक्षिचारुनयने हे रत्नमंजीरके
मत्स्वान्तोच्चवरासने विश मुदा मां दीनमान्दय ॥ ५ ॥

रक्ताम्भोजचकोरमीननयने हे स्वर्णकुम्भस्तनि
फुल्लाम्भोजकरे विलासिनिरमे इन्द्राणिसंराधिते ।
हे वृन्दावनकुंजकेलिचतुरे हे मानलीलाकरे
मत्स्वान्तोच्चवरासने विश मुदा मां दीनमानन्दय
काञ्च्यादिविभूषितोरुरुचिरे हे मन्दहास्यानने॥ ६॥
गोलोकाधिपकामकेलिरसिके हे गोकुलेशप्रिये ।
कालिन्दीतटकुंजवासनिरते हे शुद्धभावप्रिये ।
मत्स्वान्तोच्चवरासने विश मुदा मां दीनमानन्दय ॥ ७ ॥

मुक्ताराधितपादपद्मयुगले हे पार्वतीशेश्वरि
श्रीमन्नन्दकुमारमारजनिके नीलालकावृण्मखे ।
राकापूर्णनवेन्दुसुन्दरमुखे रामानुजानन्दिनि
आगत्य त्वरितं त्वमत्र विपिने मां दीनमान्दय ॥ ८ ॥

इति श्रीराधाष्टकं सम्पूर्णम्

श्रीकृष्णाष्टकम्

श्रियाश्लिष्टो विष्णुः स्थिरचरवपुर्वेदविषयो
धियां साक्षी शुद्धो हरिहरसुरहन्ताब्जनयनः ।
गदी शंखी चक्री विमलवनमाली स्थिररुचिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ १ ॥

यतः सर्वं जातं वियदनिलमुखं जगदिदं
स्थितौ निःशेषं योऽवति निजसुखांशे यो मधुहा ।

लये सर्वं स्वस्मिन् हरति कलया यस्तु स विभुः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ २ ॥

असुनायम्यादौ यमनियममुख्यैः सुकरणे—
निरुच्येदं चित्तं हृदि विलयमानीय सकलम् ।
यमीड्यं पश्यन्ति प्रवरमतयो मायिनमसौ
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षि विषयः ॥ ३ ॥

पृथिव्यां तिष्ठन् यो यमयति महीं वेद न धरा
यमित्यादौ वेदो वदति जगतामीशममलम् ।
नियन्तारं ध्येयं मुनिसुरनृणां मोक्षदमसौ
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षि-विषयः ॥ ४ ॥

महेन्द्रादिदेवो जयति दितिजान् यस्य वलतो
न कस्य स्वातन्त्र्यं क्वचिदपि कृतौ यत्कृतिमृते
कवित्वादेर्गर्व्वं परिहरति योऽसौ विजयिनः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ ५ ॥

विना यस्य ध्यानं व्रजति पशुतां शूकरमुखां
विना यस्य ज्ञानं जनिमृतिमयं याति जनता ।
विना यस्य स्मृत्या कृमिशतगतिं याति स विभुः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ ६ ॥

नरातङ्कोत्तङ्कः शरणशरणो भ्रान्तिहरणो ।
घनश्यामः कामो व्रजशिशुवयस्योऽर्ज्जुनसखः ।
स्वयंभूर्भूतानां जनक उचिताचार सुखदः ।
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ ७ ॥

यदा-धर्म ग्लानिर्भवति जगतां क्षोभकरणी ।
तदा लोकस्वामी प्रकटितवपुः सेतुधृगजः ।
सतां धाता स्वच्छो निगमगणगीतो व्रजपतिः ।
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥ ८ ॥

इति हरिरखिलात्माराधितः शंकरेण ।
श्रुति-विशदगुणोऽसौ मातृमोक्षार्थमाद्यः ।
यतिवरनिकटे श्रीयुक्त आविर्बभूव ।
स्वगुणवृत उदारः शंखचक्राब्जहस्तः ॥ ९ ॥

श्रीकृष्णाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

श्रीराधाकृपाकटाक्षस्तोत्रम्

मुनीन्द्रवृन्दवन्दिते, त्रिलोकशोकहारिणि
प्रसन्नवक्त्रपंकजे निकुञ्जभूविलासिनि।
व्रजेन्द्रभानुनन्दिनि व्रजेन्द्रसुनुसंगते।
कदाकरिष्यसि हि मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥ १ ॥
अशोकवृक्षवल्लरि-वितानमण्डपस्थिते
प्रवालजालपल्लवप्रभारुणाङ्घ्रिकोमले ।
वरामयस्फुरत्करे प्रभूतसम्पदालये—
कदाकरिष्यसि हि मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥ २ ॥
तड़ितसुवर्णचम्पकप्रदीप्तगौरविग्रहे
मुखप्रभापरास्तकोटिशारदेन्दुमंडले ।
विचित्रचित्रसञ्चरञ्चकोरशावलोचने ।
कदाकरिष्यसि हि मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥ ३ ॥
अनङ्गरङ्गमंगलप्रसंगभङ्गुरभ्रुवा
सुसंभ्रमं सुविभ्रमदृगन्तवाणपातने ।
निरन्तरंवशीकृतप्रतीतनन्दनन्दने
कदाकरिष्यसि हि मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥ ४ ॥
मदोन्मदातियौवने प्रमोदमानमण्डिते
प्रियानुरागरञ्जिते कलाविलासपण्डिते।
अनन्यधन्यकुञ्जराज्यकामकेलिकोविदे
कदाकरिष्यसि हि मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥ ५ ॥
अशेषहावभावधीरहीरहारभूषिते
प्रभूतशातकुम्भकुम्भिकुम्भिकुम्भसुस्तनि ।
प्रशस्तमन्दहास्यचूर्णपूर्णसौख्यसागरे
कदाकरिष्यसि हि मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥ ६ ॥
मृणालवालवल्लरितरङ्गरङ्गदोलंते ।
लताग्रलास्यलोलनीललोचनावलोकने।
ललल्लुलन्मिलमनोज्ञमुग्धमोहनाश्रये ।
कदाकरिष्यसि हि मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥ ७ ॥
सुवर्णमालिकाञ्चिते त्रिरेखकण्ठकम्बुके
त्रिसूत्रमङ्गलीगुणत्रिरत्नदीप्तिदीधिते ।
सलोलनीलकुन्तले प्रसूनगुच्छगुम्फिते

कदाकरिष्यसि हि मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥ ८ ॥
नितम्बबिम्बलम्बमानपुष्पमेखलागुणे
प्रसक्तरत्नकिङ्किणी कलापमध्यमञ्जुले ।
करीन्द्रशुण्डदण्डिकावरोह सौभगोरुके
कदाकरिष्यसि हि मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥ ९ ॥
अनेकमन्त्रनादमञ्जुनूपुरारवस्खलत्
समाजराजहंसवंशनिक्वणातिगौरवे ।
विलोलहेमवल्लरीविडम्बचारुचक्रमे ।
कदाकरिष्यसि हि मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥ १० ॥
अनन्तकोटिविष्णुलोकनम्रपद्मजार्चिते
हिमाद्रिजापुलोमजाविरिञ्चजावरप्रदे ।
अपारसिद्धिवृद्धिदिग्धसत्पदाङ्गुलीनखे
कदाकरिष्यसि हि मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥ ११ ॥
मखेश्वरि क्रियेश्वरि सुधेश्वरि सुरेश्वरि
त्रिवेदभारतीश्वरि प्रमाणशासनेश्वरि ।
रमेश्वरि क्षमेश्वरि प्रमोदकाननेश्वरि
व्रजेश्वरि व्रजाधिपे श्रीराधिके नमोऽस्तुते ॥ १२ ॥
इतीदमद्भुतं स्तवं निशम्य भानुनन्दिनी
करोति सन्ततं जनं कृपाकटाक्षभाजनम् ।
भवेत्तदेव सञ्चितत्रिरूपकर्म्मनाशनं
लभेत्तदा व्रजेन्द्रसूनुमण्डलप्रवेशनम् ॥ १३ ॥
राकायाञ्च सिताष्टभ्यां दशम्याञ्चविशुद्धया ।
एकादश्यां त्रयोदश्यां यः पठेत् साधकः सुधी ॥ १४ ॥
यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति साधकः ।
राधाकृपाकटाक्षेण भक्तिः स्यात् प्रेमलक्षणा ॥ १५ ॥

इति श्रीराधाकृपाकटाक्षस्तोत्रं समाप्तम् ।

श्रीकृष्णकृपाकटाक्षस्तोत्रम्

भजे व्रजेकमण्डनं समस्तपापखण्डनम्
सुभक्तचित्तरंजनं सदैव नन्दनन्दनम् ।
सुपिच्छगुच्छमस्तकं सुनादवेणुहस्तकम्
अनङ्गरङ्गसागरं नमामि कृष्णनागरम् ॥ १ ॥

मनोजगर्व्वमोचनं विशाललं ललोचनं
विधूतगोपशोचनं नमामि पद्मलोचनम् ।
करारविन्दभूधरं स्मितावलोकमु ःदरं
महेन्द्रमानदारणं नमामिकृष्णनागरम् ॥ २ ॥
सुदीप्यमानकुण्डलं सुचारुगण्डमंडलं
व्रजाङ्गनैकवल्लभं नमामि कृष्णदुर्लभम् ।
यशोदया समोदया सगोपया सनन्दया
युतं सुखैकदायकं नमामि गोपनायकम् ॥ ३ ॥
सदैवपादपंकजं मदीयमानसे स्थितं
दधानमुण्डमालिकं नमामि नन्दबालकम् ।
समस्तदोषशोषणं समस्तलोकपोषणं
समस्तगोपमानसं नमामिनन्दलालसम् ॥ ४ ॥
भुवोर्भारावतारकं भवाब्धिकर्णधारकं
यशोमती किशोरकं नमामिचित्तचकोरम् ।
दृगन्तकान्तभङ्गिनं सदा मदालिसङ्गिनं
दिने दिने नवं नवं नमामिनन्दसंभवम् ॥ ५ ॥
गुणाकरं सुखाकरं कृपाकरं कृपापरं
सुरद्विषन्निकन्दनं नमामिगोपनन्दनम् ।
नवीनगोपनागरं नवीनकेलिलम्पटं
नमामिमेघसुन्दरं तड़ितप्रभालसत्पटम् ॥ ६ ॥
समस्तगोपमोहनं हृदम्बुजैकमोदनं
नमामिकुञ्जमध्यगं प्रसन्नभानुशोभनम् ।
निकामकामदायकं दृगन्तचारुशायकं
रसालवेणुगायकं नमामिकुंजनायकम् ॥ ७ ॥
विदग्धगोपिकानने मनोज्ञतल्पशायिनं
नमामिकुंजकानने प्रवृद्धवह्निपायिनम् ।
किशोरिकान्तिरञ्जितं दृगञ्जनं सुशोभितं
गजेन्द्रमोक्षकारिणं नमामि श्रीविहारिणम् ॥ ८ ॥
यदा तदा यथा तथा तथैव कृ ःणसत्कथा
मया सदैव गीयतां तथा कृपा विधीयताम् ।
प्रमाणिकस्तवद्वयं पठन्ति-प्रातरुत्थिताः
त एव नन्दनन्दनं मिलन्तिभावसंस्थिताः ॥ ९ ॥

इति श्रीकृष्णकृपाकटाक्षस्तोत्रम् ।

ब्रह्मणः परमात्मनः स्तोत्रम्

ॐ नमस्ते स ते सर्व्वलोकाश्रयाय, नमस्ते चिते विश्वरूपात्मकाय ।
नमोऽद्वैततत्वाय मुक्तिप्रदाय, नमोब्रह्मणे व्यापिणेनिर्गुणाय ॥ १ ॥
त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं, त्वमेकं जगत्कारणं विश्वरूपम् ।
त्वमेकं जगत्कर्तृपातृप्रहर्तृ, त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ॥ २ ॥
भयंभयानां भीषणं भीषणानां, गतिः प्राणिनां पावनंपावनानाम् ।
महोच्चैः पदानांनियन्तृत्वमेकं परेषां परं रक्षकं रक्षकाणाम् ॥ ३ ॥
परेश प्रभो सर्वरूपाविनाशिन्, अनिर्देश्यसर्वेन्द्रियागम्य सत्य ।
अचिन्त्याक्षर व्यापकाव्यक्ततत्व, जगद्भासकाधीशपायादपायात् ॥ ४ ॥
तदेकं स्मरामस्तदेकं जपामस्तदेकं जगतसाक्षिरूपं नमामः ।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं भवाम्भोधिपोतं शरणंव्रजामः ॥ ५ ॥
पञ्चरत्नमिदं स्तोत्रं ब्रह्मणः परत्मात्मनः ।
यः पठेद् प्रयतोभूत्वा ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ६ ॥

इति ब्रह्मणः परमात्मनः स्तोत्रं समाप्तम् ।

श्रीमधुराष्टकम्

अधरं मधुरं वदनं मधुरम्
नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरम्
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ १ ॥
वचनं मधुरं चरितं मधुरम्
वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरम्
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ २ ॥
वेणुर्मधुरो रेणुमधुरः ।
पाणीमधुरौ पादौमधुरौ ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरम् ।
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ३ ॥
गीतं मधुरं पीतं मधुरम्
भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरम्
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ४ ॥

करणं मधुरं तरणं मधुरम् ।
हरणं मधुरं रमणं मधुरम् ।
दमितं मधुरं शमितं मधुरम् ।
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ५ ॥

गुञ्जामधुरा माला मधुरा ।
यमुना मधुरा वीचि मधुरा ।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरम् ।
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ६ ॥

गोपी मधुरा लीला मधुरा ।
युक्तं मधुरं शिष्टं मधुरम् ॥
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरम् ।
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ७ ॥

गोपा मधुरागावो मधुराः ।
यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।
दलितं मधुरं फलितं मधुरम् ।
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ ८ ॥

तृतीय अध्याय

श्रीनिम्बार्कस्तोत्रम्

(श्रीऔदुम्बराचार्यविरचितम्)

श्रीमते सर्वविद्यानां प्रभवायसुब्रह्मणे,
आचार्याय मुनीन्द्राय निम्बार्काय नमोनमः।
निम्बादित्याय देवाय जगज्जन्मादिकारणे,
सुदर्शनावताराय नमस्ते चक्ररूपिणे।
नमः कल्याणरूपाय निर्दोषगुणशालिने,
प्रज्ञानघनरूपाय शुद्धसत्वाय ते नमः॥
सूर्यकोटि प्रकाशाय कोटीन्दुशीतलाय च,
शेषानिश्चिततत्वाय तत्वरूपाय ते नमः।
विदिताय विचित्राय नियमानन्दरूपिणे,
प्रवर्त्तकाय शास्त्राणां नमस्ते शास्त्रयोनये॥
नैमिषारण्यवसतां मुनीनां कार्यकारिणे,
तन्मध्ये मुनिरूपेण वसते प्रभवे नमः।
लीलां संपश्यते नित्यं कृष्णस्य परमात्मनः,
निम्बग्राम निवासाय विश्वेशाय नमोऽस्तुते।
स्थापिता येन पृथ्यां वै तप्तमुद्रा युगे युगे,
निम्बार्काय नमस्तस्मै दुष्कृतामन्तकारिणे॥

श्रीनिम्बार्कस्तोत्र एवं गुरुपरम्परा का संक्षिप्त स्तोत्र

हे निम्बार्क ! दयानिधे ! गुणनिधे ! हे भक्तचिन्तामणे !
हे आचार्यशिरोमणे ! मुनिगणैरामृग्यपादाम्बुज !
हे सृष्टिस्थितिपालनप्रभवन् ! हे नाथ मायाधिप !
हे गोवर्धन कन्दरालय ! विभो ! मां पाहि सर्वेश्वर !
यो राधावरपादपद्मयुगलध्यानानुषक्तो मुनि—
भक्तिज्ञानविरागयोगकिरणैर्मोहान्धकारान्तकृत ।
लोकानामत एव निम्बघटितं चादित्यनामानुगं।
निम्बादित्यगुरुं तमेव मनसा वन्दे गिराकर्मणा।
पाषण्डद्रुमदावतीक्ष्णदहनो बौद्धाद्रिखन्ताशनिः !

चार्वाकाख्यतमो निराशकरविजेर्नभमन्थारणिः—
शक्तिवादमहाहिभङ्गविपतिस्त्रैक्यि चूड़ामणिः—
राधाकृष्णजयध्वजो विजयते निम्बार्कनामा मुनिः ॥
भक्तार्त्तिघ्नमहौषधं भवभयध्वंसैकदिव्यौषधम् ।
तापानर्थकरौषधं निजजने सञ्जीवनैकौषधम् ।
व्यामोहद्दलनौषधं मुनिमनो वृत्तिप्रवृत्यौषधम् ॥
कृष्णप्राप्तिकरौषधं पिवमनो निम्बार्कनामौषधम् ॥
यो ब्रह्मेशसुरर्षिवन्दितपदो वेदान्तवेद्यो हरि—
स्तं बन्दे मनसा गिरा च शिरसा श्रीश्रीनिवासं गुरुम् ।
कण्ठे यस्य चकास्ति कौस्तुभमणिर्वेदान्ततत्वात्मको
भक्तिर्श्रीहृदये शराण्यमगतेः कारुण्यसिन्धुं मुदा ॥
श्रीहंसञ्च सनत्कुमारप्रभृतीन वीणाधरं नारदम् ।
निम्बादित्यगुरुञ्च द्वादशगुरुन् श्रीश्रीनिवासादिकान् ॥
वन्दे सुन्दरभट्ट देशिकमुखान् वसिन्दुसंख्यायुतान् ।
श्रीव्यासाद्धरिमध्यगाच्च परतः सर्व्वान् गुरुन् सादरम् ॥

श्री निम्बार्काचार्य जी की स्तुति

(१)

जय जय सुदर्शनदेव श्रीनिम्बार्क भगवन जयति जय ।
मुनि मार्त्तण्ड प्रचण्ड तप शत कोटि रवि समय तेजमय ॥
पाखण्ड तम खण्डन प्रभो सद्धर्म मण्डल अवतरे ।
वैष्णवसरोज विकाशि हे सर्वेश भवभय हरे ॥
तव हृदय हिम पावन परम हरि प्रेम कालिन्दी वहै ।
करि स्नान सज्जन विमल हो अति श्रेष्ठ पावन पद लहै ॥
आश्रित सुजन तव सम्पदा हरिनाम नौकासीन है ।
केवट तुम्हें भवसिन्धु लखि तव ध्यान पद लवलीन है ॥
हे नाथ माया भँवर ते आपार यह नौका करो ।
हरि प्रेमरसवल्ली लगा तृष्णा तरङ्गन को हरो ?
हरि विमल प्रेम विकास हो वृन्दाविपिन नितवास हो ।
श्री नन्दनन्दन पास हो नहिं अन्य की बस आस हो ॥
हो मुदित यह वर दीजिये श्रीयुगलचरणाम्बुज भजैं ।
तजि सकल मिथ्या द्वेषको एक हरि रस पथ सनैं ॥

तव सम्पदायश धवल ध्वज फहरात नभ शोभा लहै ।
तरु निम्बपर रवि तेज सम जगधर्म उजियारा रहै ॥

(२)

श्रीनिम्बार्क दीनबन्धो ! सुन पुकार मेरी ।
पतितनमे पतित नाथ शरण आयौ तेरी ।
मात तात भगिनी भ्रात परिजन समुदाई ।
सब ही सम्बन्ध त्यगि आयौ सरणाई ॥
कामक्रोध लोभ मोह दावानल भारी ।
निसिदिन हौ जरौं नाथ लीजियै उबारी ।
अम्बरीष भक्तजानि रक्षा करि धाई ।
तैसेई निजदास जानि राखौ सरणाई ।
भक्तवत्सल नाम नाथ वेदनि मे गायौ ।
श्रीभट तब चरणपरसि अभयदान पायो ॥

श्री सन्तदासाष्टकम्

[श्री लक्ष्मीमिश्रविरचितम्]

शरदिन्दु-कुन्द-तुषार-हार-पवीर-पारदसुन्दरम्
जप-मालिका-मणि-पद्मपाणिमशेषलोकहितैषिणम् ।
कुलमौलिमादिगुरुं जटामुकुटादिभूषणभूषितं
प्रणमामि सम्प्रति "सन्तदास" मिहैव दर्शितविष्णुकम् ॥ १ ॥

शुभनिम्बभानुपथानुगं हरिभक्तिपरायणं शिवं
बहुलानुरागनिवासरासविलासदर्शनरागिणम् ।
रमणीय वेणुनिनाद-वादविवाद-संश्रवणे रुचिम्,
प्रणमामि सम्प्रति "सन्तदास" मिहैव दर्शितविष्णुकम् ॥ २ ॥

शिवब्रह्मविष्णुप्रपूजकं निजभक्तिरक्षितसाधकम् ।
नवसिद्धयोगीमुनीन्द्रवन्दितनिम्ब भानुकुलोद्भवम् ।
करुणालयं हि उदारता करशान्तदान्त-सुमन्दिरम्
प्रणमामि सम्प्रति "सन्तदास" मिहैव दर्शितविष्णुकम् ॥३॥

सकलां विहाय स्वसम्पदं मुरारिपादसमाश्रितम्
जगतां स्वकीयविशुद्धमार्गप्रदर्शकं हरिसेवकम् ।
कलिकल्मषघ्नमशेषसद्गुणसागरं नरनागरं
प्रणमामि सम्प्रति-"सन्तदास" मिहैव दर्शितविष्णुकम् ॥४॥

सनकादिकैर्मुनिभिः प्रदर्शितपद्धतौ पथिकं स्थिरं
जगतीतलैक-सुवाटिका हृदिकंजकुड्मलषटपदम् ।
वृषभानुजाप्रियपद्मरेणुसितं हितं सुललाटकम्
प्रणमामि सम्प्रति "सन्तदास" मिहैव दर्शितविष्णुकम् ॥५॥

यमुनातरङ्गसमाकुले पुलिने विहारपरायणम् ।
निजधर्म्मकर्म्मपथे स्थितं प्रथितं विचारप्रवाहने ।
सततं सुसेवितसज्जनं जनतां सुधीर-प्रचारकम्
प्रणमामि सम्प्रति "सन्तदास" मिहैव दर्शित विष्णुकम् ॥६॥

गुरुपादपद्मरजःकणैर्विमलीकृतं सुललाटकम्
मुनिमण्डलीनदराजहंसमसंख्यशिष्यसुसेवितम् ।
हरिनामपावनसागरं व्रजधूलिभूषणभूषितं
प्रणमामि सम्प्रति "सन्तदास" मिहैव दर्शित विष्णुकम् ॥७॥

निजसम्प्रदायसमुन्नतौ यतमानमामरणं परम्
जगतीतलैकसुधाकरं निजभक्तजनैक सुरक्षकम् ।
कलिकल्मषोत्कटतापनं भवसागरात् परित्राणदं
प्रणमामि सम्प्रति "सन्तदास" मिहैव दर्शितविष्णुकम् ॥८॥

भक्तिमान् यः पठेन्नित्यं सन्तदासाष्टकं शुभम् ।
ऐहिकं हि सुखं भुक्त्वाचान्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥
भक्तिदं वैष्णवाणां च मुमुक्षूणां च मोक्षदं ।
सन्तदासाष्टकं श्रुत्वा नरः सद्गतिमाप्नुयात् ॥

श्री सन्तदास-स्तोत्रम्

[श्री हेमन्तकुमार भट्टाचार्य काव्य-व्याकरण-तर्कतीर्थ विरचितम्]

(१)

येन भक्तजनचित्तचारिणा
जन्मना वसुमती पवित्रिता ।
पूतपादरजसा तमोहरं
सन्तदासमनिशं भजामि तम् ॥

(२)

अन्तरेण विषये विरागिणा
कर्मजातमतिवाहयलीलया ।
येन सन्यसनमास्थितं गुरुं
सन्तदासमनिशं भजामि तम् ॥

(३)

यो विहाय जगदुत्तरं यशो
दुस्त्यजां विपुलवित्तसम्पदम् ।
प्रापदीशपदपङ्कजाश्रयं
सन्तदासमनिशं भजामि तम् ॥

(४)

दीक्षया परमशुद्धया मनः
शोधयन् निखिलशिष्यसन्ततेः ।
रागमूढमलूनादविद्यया
सन्तदासमनिशं भजामि तम् ॥

(५)

यस्य भूतिसितया रुचान्वितं
लम्बमानजटयाञ्चितं वपुः ।
कान्तिमन्नयनमात्मदर्शनात्
सन्तदासमनिशं भजामि तम् ॥

(६)

चेतसा परकृपालुना कला
व्युत्पथप्रहितचेतसां नृणाम् ।
ईशपादतरितं भवाम्बुधौ
सन्तदासमनिशं भजाम्यहम् ॥

(७)

दुःखमग्नजगदुद्धिधीषया
सदगुरुं कलितकायमीश्वरम् ।
तत्वमस्यमृतभारतीरितं
सन्तदासमिह सन्ततं भजे ॥

(८)

यत्कृपानिपुणमन्वभावय—
न्नामरूपमखिलं न वास्तवम् ।
वस्तु तत् परमचिन्मयं विभु
सन्तदासमनिशं भजाम्यहम् ॥

(९)

परमशर्मं परं करुणाकरं
निखिलतापहरं गुणसागरम् ।

तमसि तत्पददर्शनभास्करं
ब्रजविदेहिमहान्तमहं भजे ॥

अष्टश्लोको गीता

श्रीभगवानुवाच ।

ॐ मित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥८।१३॥

अस्यार्थ

"ओम्" इस एकाक्षर वेदवाक्य को उच्चारण पूर्वक मुझे स्मरण करते हुए जो देहत्याग करके प्रयाण करते हैं, वे परमगति प्राप्त करते हैं ।

(इस श्लोक का तात्पर्य यह समझना होगा कि जीवित रहकर स्वधर्मोचित कर्म्म एवं उनका स्मरण सर्वदा करना चाहिए । कारण कि निरन्तर उनका चिन्तन न करने पर अन्तकाल में अर्थात् उनका (भगवान का) स्मरण नहीं आ सकता ।

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत् प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥११।३६॥

अस्यार्थ

अर्जुन ने कहा, कि हे हृषीकेष । तुम्हारे माहात्म्यकीर्त्तन से समस्त जगद आनन्दित एवं (तुम्हारे प्रति) अनुरागयुक्त होता है । राक्षस भी डरकर चारों तरफ भागते हैं एवं सिद्धगण नमस्कार करते हैं, ये सभी कथन युक्तियुक्त हैं ।

श्रीभगवानुवाच

सर्व्वतः पाणिपादं तद सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१३।१३॥

इनका हाथ, पैर सर्वत्र है, सभी ओर इनको आँखें, शिर एवं मुख हैं । सभी ओर इनको श्रवणेन्द्रिय है, सभी कुछ में वे व्याप्त हैं ।

कविं पुराणमनुशासितारं
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात ॥ ८/९ ॥

प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ ८/१० ॥

अस्यार्थ

कवि (सर्वज्ञ), पुराण (अनादि) सर्वनियन्ता, परमाणु से भी सूक्ष्म, सभी का पालन कर्ता, अचिन्त्यरूप, आदित्यवत् स्वप्रकाश, प्रकृति से भी परे स्थित पुरुष को जो स्मरण करता है, वह पुरुष मृत्युकाल में स्थिर चित्त एवं भक्ति योगबलयुक्त होकर (दोनों भौहें) भ्रूद्वय के बीच प्राण वायु को निबद्ध करके उस परमज्योतिरूप पुरुष को प्राप्त करता है।

श्रीभगवानुवाच
उर्द्धवमूलमधः शाखमश्वथ्यम् प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णाणि यस्तं वेद सवेदवित्॥ १५/१॥

अस्यार्थ

श्री भगवानजी ने कहा—

ऊपर (उर्द्धवदिक) में जिनका मूल है एवं नीचे की ओर जिनकी शाखा विस्तृत है, एवंविध अश्वथ्थ वृक्ष रूप में श्रुतिगण संसार के विषय में वर्णन करते हुए कहा है कि, यह अनादि अतीत काल से प्रवर्तित होकर चिर काल से चला आ रहा है एवं चलता रहेगा। वेदसमूह उनके पत्र रूप में कल्पित हैं, इस वाक्यार्थ को जिसने यथार्थ रूप से समझा है वही वेदविद हैं।

मन्तव्य—

अश्वथ्थ वृक्ष सर्व्वापेक्षा दृढ़ वृहत एवं बहुत काल तक जीवित रहता है। इसीलिए अश्वथ्य वृक्ष के साथ संसार की तुलना की है। परब्रह्म से इनकी उत्पत्ति है अतः उर्द्धवमूल वृक्ष की इस प्रकार वर्णना है। प्रवाहरूप में संसार नित्य वर्त्तमान रहता है, अतएव उसको अव्यय कहा गया है। जिस रूप से वृक्ष के सभी पत्ते छाया प्रदान पूर्वक सभी को सुख दिया करते हैं एवं पथिक इन के नीचे आश्रय प्राप्त होते हैं, तद्रूप वेद संसार वृक्ष के पत्र स्वरूप हो कर धर्म उपदेश प्रदानपूर्वक सभी को आश्रय एवं सुख दान करते हैं।

सर्वस्यचाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनञ्च।
वेदेश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेवचाहम्॥ १५/१५॥

अस्यार्थ

सभी के अन्दर में प्रविष्ट हूँ, स्मृति, ज्ञान और इन दोनों की विलुप्ति हमसे होती है वेद मुझे ही समझाते हैं। मैं ही वेदान्त का प्रणयन कर्ता हूँ, और वेद का यथार्थ मर्म मैं ही जानता हूँ।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्तैवमात्मानं मत्परायणः॥ ९/३४॥

तुम मद्गतचित्त और मद्भक्त हो कर मेरे उपासना में रत होते हो एवं मुझे ही

नमस्कार (सम्पूर्णरूपेण) आत्मसमर्पण करो। इस प्रकार मेरा शरणागत हो कर मन को मुझ में युक्त करने से मुझे प्राप्त करोगे।

इति श्री मद्भागवद्गीतासूपनिषत्सूब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुनसंवादे अष्टश्लोकी गीता समाप्ता।

चतुःश्लोकी भागवत

[श्रीमद्भागवत २य स्कन्ध ९म अध्याय]

श्रीभगवानुवाच

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गञ्च गृहाण गदितं मया॥ ३०॥
यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्म्मकः।
तथैव तत्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥ ३१॥

अनुवाद

श्री भगवान् ने कहा—हे ब्रह्मन्! विविधज्ञान और भक्ति योग के साथ जो मेरा परम गोपनीय ज्ञान व ज्ञान का साधन कहकर मैंने पहले कहा है, वह अभी कह रहा हूँ सुनो॥ ३०॥

मैं स्वरूपतः यादृश, जैसे सत्तायुक्त एवं जैसे रूप, गुण और कर्म सम्पन्न उस समुदय तत्वज्ञान मेरे अनुग्रह से तुम्हें हो॥ ३१॥

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसतपरम।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्यते सोऽस्म्यहम्॥ ३२॥
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः॥ ३३॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥ ३४॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्वजिज्ञासुनात्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥ ३५॥

अस्यार्थ

हे ब्रह्मन! सृष्टि से पूर्व सभी स्थूल एवं सूक्ष्म पदार्थ का मूलकारण जो वस्तु था, वह मैं ही था; और कुछ भी नहीं था। सृष्टि के बाद भी जो अवशिष्ट था, वह भी मैं ही हूँ। और जो यह चिदचिदात्मक जगत् है वह भी मैं ही हूँ॥ १॥

हे ब्रह्मन्! जैसे प्रकाश अथवा अप्रकाश ज्ञाता रहने से ही प्रतीत होता है, ज्ञाता के

---

३२ से ३५ श्लोक तक चतुः श्लोकी भागवत कहा गया है।

अभाव में प्रतीत नहीं होता है। वैसे ही जो अचेतन वस्तु ज्ञाता रहने से प्रतीत होता है, ज्ञाता के अभाव में प्रतीत नहीं होता है, उस अचेतन द्रव्य को मेरी माया समझना ।।२।।

क्षिति, अप, तेज प्रभृति महाभूत जैसे भौतिक घटपटादि में अनुप्रविष्ट रहता है, और अप्रविष्ट भी कह सकते हैं, उसी प्रकार सृष्टि के बाद मैं (परमात्मा) उस भूत एवं भौतिक सभी पदार्थों में प्रवेश करता हूँ, और उसमें अप्रविष्ट भी हूँ अर्थात् सभी भूत एवं भौतिक पदार्थ में मैं हूँ, किन्तु मेरा रहना उसी तक सीमित नहीं ॥ ३ ॥

सभी कार्य में उपादान कारणरूप मे अनुवर्तन (सहस्थिति) एवं सभी कार्य में निमित्त कारणरूप में अनववर्तन (अनवस्थिति) इस अन्वय और व्यतिरेक द्वारा जो सभी कार्य में सभी समय अवस्थान कर रहे हैं, वही तत्वज्ञानेच्छु व्यक्तियों के द्वारा विचार्य हैं ॥ ४ ॥

ध्यानमाला

विष्णुध्यान

(ॐ) ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्त्ती;
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।
केयूरवान् कनककुण्डलवान् किरीटि
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥

पूजा का मन्त्र—ॐ नमः श्रीविष्णवे नमः।

प्रणाम

ॐ नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

श्री कृष्ण जी का ध्यान

ॐ स्मरेद् वृन्दावने रम्ये मोहयन्तमनारतम्।
गोविन्दं पुण्डरीकाक्षं गोपकन्याः सहस्रशः ॥
आत्मनो वदनाम्भोजे प्रेरिताक्षिमधुव्रताः।
पीड़िताः कामबाणेन चिरमाश्लेषणोत्सुकाः।
मुक्ताहार-लसत्पीन-तुङ्गस्तन-भरानताः ॥
स्त्रस्त-धम्मिलवसना मदस्खलित-भाषणाः।
दन्तपंक्ति-प्रभोद्भासि-स्पन्दमानाधराञ्चिताः।
विलोभयन्ती-र्विविधैर्विभ्रमैर्भावगर्भितैः।
फुल्लेन्दीवरकान्तिमिन्दुवदनं वर्हावतंसप्रियम्।
श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम्।

गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गो-गोप-संघावृतम् ।
गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषं भजे ॥

पूजा का मन्त्र—(ॐ) श्री कृष्णाय नमः । श्री कृष्ण जी का प्रणाम मन्त्र-३ पृ० द्रष्टव्य

श्री राधिका जी का स्तव

श्री राधाचरणद्वन्द्वं वन्दे वृन्दावनाश्रितम् ।
सानन्दं ब्रह्मरुद्रेन्द्र-वन्दितं तदहर्निशम् ॥
त्वं देवि जगतां मातर्विष्णुमाया सनातनी ।
कृष्णप्राणाधिके देवि विष्णुप्राणाधिके शुभे ॥
कृष्णप्रेममयी शक्तिः कृष्णसौभाग्यरूपिणी ।
कृष्णभक्तिप्रदे राधे नमस्ते मङ्गलप्रदे ।
तप्तकाञ्चनगौराङ्गीं राधां वृन्दावने वरीम् ।
वृषभानुसुतां देवीं तां नमामि हरिप्रियाम् ॥

रामजी का ध्यान

कोमलाङ्गं विशालाक्षमिन्द्रनीलसमप्रभम् ।
पीताम्बरधरं ध्यायेत् रामं सीतासमन्वितम् ॥
दक्षिणांशे दशरथं पुत्रावेक्षणतत्परम् ।
पृष्ठतो लक्ष्मणं देवं सच्छत्रं कनकप्रभम् ॥
पार्श्वे भरत-शत्रुघ्नौ तालवृन्तकरावुभौ ।
अग्रे व्यग्रं हनुमन्तं रामानुग्रहकाङ्क्षिणम् ॥

रामजी का प्रणाम

रामाय रामचन्द्राय रामभद्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥
आपदामपहर्त्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥

सीताजी का ध्यान

नीलाम्भोजदलाभिरामनयनां नीलाम्बरालङ्कृतां,
गौराङ्गीं शरदिन्दुसुन्दरमुखीं विस्मेरविम्वाधराम् ।
कारुण्यामृतवर्षिणीं हरिहरब्रह्मादिभिर्वन्दितां,
ध्यायेत् सर्वजनेप्सितार्थफलदां रामप्रियां जानकीम् ॥

सीताजी का प्रणाम

वन्दे रामहृदम्भोज-प्रकाशां जनकात्मजाम् ।
सत्रिवर्ग-परमानन्ददायिणीं ब्रह्मरूपिणीम् ॥

श्री हनुमान् जी का प्रणाम

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपति प्रियभक्तं वातजातं नमामि
गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम् ।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥
अञ्जनानन्दनंवीरं जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्देलङ्काभयङ्करम् ॥
उल्लंघ्य सिन्धोः सलिलं सलीलम्
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्काम्
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥
मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यम्
श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥
आञ्जनेयमतिपाटलाननं-
काञ्चनाद्रि कमनीयविग्रहम्-
पारिजाततरुमूलवासिनं
भावयामि पवमाननन्दनम् ॥
यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं,
मारुतिं नमामि राक्षसान्तकम् ॥

कीर्तन

(१)

मङ्गल मूरति नियमानन्द ।
मङ्गल युगलकिसोर हंस वपु श्रीसनकादिक आनन्द कन्द ।
मङ्गल श्री नारद मुनि मुनिवर, मङ्गल निम्ब दिवाकर चन्द ॥
मङ्गल श्री ललितादि सखीगण, हंस वंस सन्तन के वृन्द ।
मङ्गल श्री वृन्दावन यमुना तट वंसीवट निकट अनंद ॥
मङ्गल नाम जपत जे श्रीभट्ट कटत अनेक जन्म के फंद ॥

(२)

जय राधे जय राधे राधे, जय राधे श्री राधे।
जय कृष्ण जय कृष्ण कृष्ण, जय कृष्ण जय श्रीकृष्ण ॥

श्यामा-गौरी नित्यकिशोरी, प्रीतमजोरी श्रीराधे ॥ जय राधे इत्यादि ॥
रसिक-रसीलो छैल-छबीलो गुण-गर्वीलो, श्रीकृष्ण ॥ जय कृष्ण इत्यादि ॥
रासविहारिणि रसविस्तारिणि पिय उरधारिणी श्रीराधे ॥जय राधे इत्यादि॥
नव-नवरङ्गी नवल त्रिभङ्गी श्यामसुअङ्गी श्रीकृष्ण ॥जय कृष्ण इत्यादि ॥
प्राण-पियारी, रूप उजारी अति सुकुमारी श्रीराधे। जय राधे इत्यादि ॥
मैन मनोहर महा-मोदकर सुन्दर-वरतर श्रीकृष्ण ॥ जय कृष्ण इत्यादि ॥
शोभा-श्रेनी, मोभा-मैनी-कोकिल-वैनी श्रीराधे ॥ जय राधे इत्यादि ॥
कीरतिवन्ता कामनिवान्ता, श्रीभगवन्ता श्रीकृष्ण ॥ जय कृष्ण इत्यादि ॥
चन्दावदनी, कुन्दारदनी-शोभा-सदनी श्रीराधे ॥ जय राधे इत्यादि ॥
परम उदारा, प्रभा-अपारा, अति सुकुमारा श्रीकृष्ण ॥ जय कृष्ण इत्यादि ॥
हंसा-गमनी, राजत-रमणी क्रीड़ाकमनी श्रीराधे ॥ जय राधे इत्यादि ॥
रूप-रसाला नयन-विशाला, परम-कृपाला श्रीकृष्ण ॥ जय कृष्ण इत्यादि ॥
कीरतिवारी भानुदुलारी मोहनप्यारी श्रीराधे ॥ जय राधे इत्यादि ॥
यशोदानन्दन जनमनरञ्जन ब्रजकुलचन्दन श्रीकृष्ण ॥ जय कृष्ण इत्यादि ॥
कंचन-वेली रति-रस-वेली अतिअलवेली श्रीराधे ॥ जय राधे इत्यादि ॥
सब सुख-सागर, सब गुण-आगर, रूप उजागर श्रीकृष्ण ॥जय कृष्ण इत्यादि॥
रमणी-रम्या तरुतरतम्या सुगुण-अगम्या श्रीराधे ॥ जय राधे इत्यादि ॥
धाम-निवासी प्रभा-प्रकाशी, सहज-सुहासी श्रीकृष्ण ॥ जय कृष्ण इत्यादि ॥
शक्त्याह्लादिनी अतिप्रियवादिनी उर-उन्मादिनी श्रीराधे ॥जय राधे इत्यादि॥
अङ्ग अङ्ग टोना सरससलोना, सुभग सुठौना श्रीकृष्ण ॥ जय कृष्ण इत्याप्रि॥
राधानामिनी गुण अभिरामिनी 'श्रीहरिप्रिया'स्वामिनि श्रीराधे ॥जय राधे इत्यादि
हरे हरे हरि हरे हरे हरि हरे हरे हरि श्रीकृष्ण ॥ जय कृष्ण इत्यादि ॥

राग केदार—आभास दोहा (श्रीभट्टजी कृत युगलशतक)

चरण कमल की सेवा, दीजै सहज रसाल
घर जायो मुँहि जानिके चेरो मदन गोपाल-

पद—मदन गोपाल शरण तेरी आयो।
चरण कमल की सेवा दीजे चेरो करि राखो घर जायो।

धनि-धनि माता-पिता सुत बन्धु, धनि जननी जिन गोद खिलायो।
धनि-धनि चरण चलत तीरथको, धनि गुरु जिन हरिनाम सुनायो ॥

जे नर विमुख भये गोविन्द सों, जन्म अनेक महा दुख पायो।
'श्रीभट' के प्रभु दियो अभयपद यम, ड्ररयो जब दास कहायो॥
रे मन वृन्दाविपिन निहार।
यद्यपि मिलें कोटि चिन्तामनि तदपि न हाथ पसार।
विपिनराज सीमा के बाहिर, हरिहु कों न निहार॥
जे श्रीभट्ट धूरि धूसर, तन यह आसा उर धार॥

पंगत के समय का भजन

सीयाहरि नारायण गोविन्दे श्रीरामकृष्णगोविन्दे।
जय जय गोपी जय जय गोपाल जय जय सदा विहारीलाल।
जय वृन्दावन जय यमुना जय वंशीवट जय पुलिना।
हरिसखी छे मित्राचार हरि उतारे पहली पार।
बोलो सन्त हरि हरि मुखपर मुरली अधर धरि।
मानसी गंगा श्रीहरदेव गिरिवर की परिक्रमा देओ।
गले में तुलसी मुख में राम हृदये विराजे शालिग्राम।
भरत शत्रुघ्न चार भाइ रामजी के शोभा बरणे ना जाइ।
गोविन्द गोविन्द गाओगे प्रेम पदारथ पाओगे।
गोविन्द नाम विसारगे जिति वाजि हारगे।
कमला विमला मिथिला धाम अवधसरयु सीताराम।
रघुपति राघव राजाराम पतित पावन सीताराम।
रामकृष्ण भज वारम्वारा चक्र सुदर्शन है राखोयारा।
जय यशोदा लालकी सब सन्तन के रक्ष पाल की।
संकट मोचन कृष्ण मुरारी भवभय भञ्जन शरण तुहारी।
हाथ में लड्डु मुख में राम हृदये विराजे शालग्राम।
भज मन कृष्ण कह मन राम गंगा तुलसी शालग्राम।
जय निम्बार्क जय हरिव्यास राधा सर्वेश्वर सुखरास।
सनकसनन्दन सनत्कुमार श्री नारद मुनि परम उदार।
श्रीरङ्गदेवी हरिप्रिया पास युगल किशोर सदा सुखरास।
जय जय श्यामा जय जय श्याम, जय जय श्रीवृन्दावनधाम।
श्री हरिप्रिया सकल सुखरास सर्व वेदन का सारोद्धार।

(३)

सुमरु मन जय जय जय ब्रजराज।
मथुरा में हरि जन्म लिओ दया भक्तवत्सल महाराज।

मथुरा से हरि गोकुल आये कंस के भये आवाज।
केश पकड़कर हरि कंस पछारो उग्रसेने दिओराज।
निर्मल जल यमुना जो की कियो दया नाथाय काली नाग।
दावानल को पान कियो दया पिमत दुग्ध सिराय।
डुवत ते ब्रज राख लिओ दया नखपर गिरिवर धार।
जल डुवत गजराज उगाड़ियो (ओयारे) चक्र सुदर्शन धार।
पाण्डव प्राणदान यदुनन्दन राखि दया द्रौपदी के लाज।
जन ब्रजानन्द गोपालजो का शरण जन्म सफल भये आज।

पंगत में जय ध्वनि

श्री रामकृष्णदेवजी की जय, श्री वृन्दावनविहारीजी की जय, श्री सर्वेश्वर भगवान की जय, श्री राधाविहारीजी की जय, शालग्रामदेवजी की जय, गोपालजी की जय, अयोध्यानाथजी की जय, नृसिंहदेवजी की जय, हनुमान् गरुड़देवजी की जय, रमापति रामचन्द्रजी की जय, वृन्दावन कृष्णचन्द्रजी की जय, ब्रजेश्वरी राधारानीजी की जय, (इसके बाद गुरु परम्परा की जय कहना चाहिए इतना न हो सके तो संक्षेप में कहें)—चार धाम की जय, चार संप्रदाय की जय, अनन्त कोटी वैष्णवन की जय, बावन द्वारा (५२) की जय, निर्वाणी अखाड़ा की जय, श्री हंस भगवान की जय, श्री सनकादि भगवान की जय, श्री नारद भगवान की जय, श्री निम्बार्क भगवान की जय, द्वादश आचार्यन की जय, अष्टादश भट्टन की जय, श्री हरिव्यासदेवाचार्य की जय, श्री स्वभूराम देवाचार्य की जय, श्री चतुर चिन्तामणि देवाचार्यजी की जय (नागाजी महाराज) की जय, श्री इन्द्रदासजी काठिया बाबा की जय, श्री ब्रजरङ्गदासजी काठिया बाबा की जय, श्री रामदास काठिया बाबा की जय, श्री सन्तदास काठिया बाबा की जय, श्री धनञ्जयदास काठिया बाबा की जय, वर्तमान महन्त श्री रासविहारीदासजी की जय, सब सन्तन की जय, सब भक्तन की जय, दाता भोक्ता की जय, रसुइया पुजारी की जय, कोठारी भाण्डारी की जय, (कोई भाण्डारा देने पर अथवा किसी के मकान जाने पर उनके नाम में इस प्रकार जय देना चाहिए, यथा—अमुक की जय, उनकी गुरुगोविन्द की जय, उनकी समस्त बालगोपाल की जय, उनकी समस्त परिवार की जय) आस्थान पुरुष की जय, लक्ष्मी महारानी की जय, काशी विश्वनाथ की जय, माता अन्नपूर्णा महारानी की जय, श्री महाप्रसाद की जय, (एकादशी फलाहार होने पर—एकादशी मैया की जय, एकादशी फलाहार की जय); इसके बाद सब कोई मिलकर निम्नलिखित दोहा को कहकर प्रसाद ग्रहण करें—यथा—

"राम कहे तो सुख उपजे, कृष्ण कहे तो दुख जाय, महिमा महाप्रसाद की पाओ प्रीतलगाय, बोलो सन्त मधुरसो वाणी प्रेम से श्री हरे।"

गुरु स्तुति

१

भवसागर तारण कारण हे,
रवि-नन्दन-बन्दन खण्डन हे,
शरणागत-किङ्कर भीत मने,
गुरुदेव दया कर दीनजने ।।

२

हृदि कन्दर-तामस-भास्कर हे,
तुमि विष्णु प्रजापति शंकर हे,
परब्रह्मपरात्पर वेद भणे,
गुरुदेव दया कर दीनजने ।।

३

मनवारण शासन अंकुश हे,
नरत्राण तरे हरि चाक्षुष हे,
गुणगानपरायण देवगणे,
गुरुदेव दया कर दीनजने ।।

४

कुल कुण्डलिनीघुम भञ्जक हे,
हृदि ग्रन्थि-विदारण-कारक हे,
मम मानस चञ्चल रात्र दिने,
गुरुदेव दया कर दीनजने ।।

५

रिपु-सूदन-मंगल-नायक हे,
सुख शान्ति वराभयदायक हे,
त्रयताप हरे तब नाम गुणे-
गुरुदेव दया कर दीनजने ।।

६

अभिमान-प्रभाव-विमर्दक हे,
गतिहीन जने तुमि रक्षक हे,
चित शंकित वञ्चित भक्तिधने,
गुरुदेव दया कर दीनजने ।।

७

तब नाम सदा शुभ साधक हे,
पतिता-धम-मानव-पावक हे,
महिमा तब गोचर शुद्ध मने,
गुरुदेव दया कर दीनजने ।।

८

जय सद्‌गुरु ईश्वर प्रापक हे,
भवरोग-विकार-विनाशक हे,
मन येन रहे तब श्रीचरणे
गुरुदेव दया कर दीनजने ।।

श्री १०८ स्वामी रामदास काठिया बाबा के सम्बन्ध में गान

(रेवती मोहन सेन कर्तृक रचित)

जय जय श्रीरामदास स्वामी जी महन्त महाराज,
जयतु देव ब्रजविदेहो जय जय तोंहारि ।
निर्विकार शान्त दान्त ब्रजमण्डल एक महन्त,
मुग्ध भ्रान्त मानववृन्दे बन्धमोचनकारी ।।
दुर्लभब्रजरजलागि आशैशव सरब त्यागी,
काठ कठिन कौपीन धारी एक निष्ठ ब्रह्मचारी ।
श्री अंगे ब्रह्मतेज विराज, भास्कर कोटि पाय लाज-
पावक जनु मूर्त्तिमन्त कल्मष तमोहारी ।।

वज्रादपि कठोर रीति कुसुम कोमल मधुर प्रीति,
गंभीर गूढ़ पूतचरित सुरनर चितहारी ॥

करुण नयने अमिय उछत्र, निछनि सजल शतदलदल,
वरिषे सतत सुमङ्गल शत, शत सन्ताप निवारि ॥

अपरूप रूप-महिमा वैभव, अपरूप लीला माधुर्य तव
प्रसीद प्रसीद प्रसीद देव ! प्रणमि चरणे तोंहारि ॥

श्री सन्तदास जी की बन्दना

(अध्यापक मुकुन्द चट्टोपाध्याय कर्तृकरचित)

(१)

(सभी मिलकर एक साथ गाये)

जय जय देव सन्तदास
वर्णना अतीत तुमि स्व-प्रकाश
जय हे देव ब्रज विदेहि
जय हउक तोमारि ।

(२)

(बायें की पंक्तियाँ)

धारणा-अतीत-क्षमारआधार
स्तुतिनिन्दाद्वेषे चिरनिर्विकार
सेवार कर्मे सदा अनलस
सेविले राधाविहारी ।

(दायें की पंक्तियाँ)

यश, धन, मान सरव त्यागि
सत्य याहा शुधु तारि अनुरागी ।
गुरुपदे प्राण, सर्वस्व दान
शिखाले निजे आचरि ।

(३)

तापी नरनारी शत सहस्र
लभित तोमार कृपा अजस्र-
दग्ध जीवन करिछ शीतल
छड़ाये शान्ति वारि ।

दीनहीनजीवे चिर दयावान ।
सकलि निशेषे करिले हे दान
अमूल्य रतन दुहाते विलाले
सर्वजन हितकारी ।

(४)

मन्थनकरि वेद वेदान्त
ब्रह्मविचार विशुद्ध सिद्धान्त-
करिले शान्त मानव भ्रान्त
विश्वजन हिते प्रचारि ।

दूरदुर्गम शास्त्र-रहस्य
प्रकाशिले हे विश्व-नमस्य !
ये अमृत लभि हले आप्तकाम
सन्धान दिते तारि ।

(५)

हेथाय तोमार जनम जन्य
बङ्ग जननी हइल धन्य
वितरि करुणा आजोविहरिछ
सकल सन्तापहारी ।

व्रजेर प्रथम बाङ्गाली महन्त
बङ्ग सन्ताने कृपा अनन्त
नरत्राण तरे, निज मोक्षपरे
आश्रम स्थापनकारी ।

(६)

निज महिमाय करिछविराज
प्रसीद आजिके हे महाराज !
सन्तति तब प्रणमिछे सब
भक्तहृदयचारि ।

शिवोपम तनु शान्त उजल,
ललाटे दीप्ति, नेत्र सजल,
लये जटाभार, प्रकाशो आबार
अपूर्व वाणी उच्चारि-

(७)

"जय बाबाजी महाराज कि जय"
शान्ति-अभय-पूर्ण-हृदय
भारत भरिया गाहे जय जय,
आश्रित नरनारी ।

पितामाता, बन्धु, आश्रित जनार
तुमि विना देव गति नाहिआर
नमामि चरणे वितर आशीष
अभयकर पसारि ।

(८)

(सभी मिलकर गाये)

जय जय जय देव सन्तदास ।
अन्तिमे गतिर दियेछ आश्वास,
जीवन भरिया हओ हे प्रकाश-
याचे सन्तान तोमारि ।

श्री राधाष्टकम्

(डाक्टर श्रीअमरप्रसाद भट्टाचार्यविरचितम्)

कृष्णाराध्यां जगतसेव्यां जगद्गुरुं जगतप्रसूम् ।
नमामि मातरं राधां कृष्णाराधनतत्पराम् ॥ १ ॥
कृष्णसुखप्रदात्रीञ्च कृष्णप्राणप्रियां शुभाम् ।
राधां कृष्णमयीं दिव्यां कृष्णहृदि स्थितां भेजे ॥ २ ॥
गोविन्दानन्दिनीं राधां गोविन्दमोहिनीं पराम् ।
गोविन्दहृदयं वन्दे सर्वकान्तशिरोमणिम् ॥ ३ ॥
शरणागतसम्भर्त्रीमार्तत्राणपरायणाम् ।
ज्ञानभक्तिप्रदां देवीं राधां वन्दे जगद्गुरुम् ॥ ४ ॥

प्रेमस्वरूपिणीं श्यामां महाभावमयीं पराम् ।
ज्ञानमयीं जगद्धात्रीं भजामि राधिकां सदा ॥ ५ ॥
व्रजेश्वरीं सखीसेव्यां वृन्दावनविहारिणीम् ।
वृन्दावनेश्वरीं देवीं प्रपद्येऽहं सदानतः ॥ ६ ॥
सुर्वसुरनरैर्गीतां महादेवीं हरिप्रियाम् ।
कृष्णानुरूपसौगुण्यां श्रीराधिकामहं भजे ॥ ७ ॥
मातर्नमामि राधे ! त्वां करुणापूरितान्तराम् ।
प्रेमभक्ति प्रदानेन प्रपन्नं पाहि मां सदा ॥ ८ ॥

इति

श्रीअमरप्रसादभट्टाचार्य विरचितं श्रीराधाष्टकं समाप्तम् ।

हरिओम तत्सत् हरि ॐ !

चतुर्थ अध्याय

विशेष गुरुपूजा

स्नानादि क्रिया समापनपूर्वक गोपीचन्दन से तिलक करके (तिलक करने का नियम) (२ पृ० द्र:) आचमन करें। ॐ विष्णुः, ॐ विष्णुः, ॐ विष्णुः कहकर तीन चुल्लू जल ले। उसके बाद हाथ जोड़ कर "ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः, दिवीव चक्षुराततम्—यह मन्त्र पढ़ें। उसके बाद तुलसी के पत्ते से मस्तक में जल छिड़कते हुए निम्नलिखित मन्त्र पाठ करें।

"ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्व्वावस्थां गतोऽपिवा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

अनन्तर एक अर्घ्य 'सजाकर हाथ में लेकर' एषोऽर्घ्यः ॐ नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ॐ नमो भगवते श्री सूर्याय नमः, इस मन्त्र को पाठ कर सूर्य के लिए अर्घ्य दे।

इसके बाद स्ववेदोक्त स्वस्ति वाचन करके "ॐ सूर्यः सोमो यमः कालः सन्ध्य भूतान्यहः क्षपा। पवनो दिकपतिर्भूमिरा-काशं खचराभराः॥ ब्राह्मं शासनमास्थाय कल्पध्वमिह सन्निधिम्। ॐ तत्सद् अयमारम्भः शुभाय भवतु" "हाथ जोड़कर इस मन्त्र का पाठ करें।"

इसके बाद आसन शुद्धि करना होगा; प्रथमतः आसन को "ॐ आधारशक्तये कमलासनाय नमः" मन्त्रों से धेनु मुद्रा दिखाकर (बाये कनिष्ठा में दक्षिण अनामिका, दक्षिण कनिष्ठा में वाम अनामिका, वाम तर्ज्जनी में दक्षिण मध्यमा एवं दक्षिण तर्जनी में वाम मध्यमा संयुक्त करने पर धेनु मुद्रा होता है) आसन में बैठे। उसके बाद आसन स्पर्शकर यह मन्त्र पाठ करें, यथा—

"ॐ कर्तव्येऽस्मिन् अमुककर्म्मणि पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु" इस मन्त्र को तीन बार कहकर, यजमान ब्राह्मण द्वारा (पुरोहितों से) 'ॐ पुण्याहं' इस मन्त्र को तीन बार पाठ कराकर वे आतपतण्डुल (अक्षत) छिड़कें। दूसरे ब्राह्मण के अभाव में कर्म्मकर्ता ब्राह्मण होने पर "पुण्याहं" इत्यादि मन्त्र स्वयं पाठ करे। पुनः अक्षत लेकर "ॐ कर्तव्येऽस्मिन् अमुककर्माणि ऋद्धि भवन्तो ब्रुवन्तु" तीन बार कहकर वैसे ही ब्राह्मणों से "ॐ ऋध्यतां" इस मन्त्र को तीन बार पाठ कराकर वे अक्षत छिड़कें। बाद में ॐ कर्तव्येऽस्मिन् अमुकर्मणि स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु "तीन बार कहकर ब्राह्मणों से ॐ स्वस्ति" इस मन्त्र को तीन बार पाठ कराकर अक्षत छिड़कें यहाँ यजुर्वेदीयों के लिए,

ऋग्वेदी एवं सामवेदी ब्राह्मण पहले "पुण्याहं...ब्रुवन्तु" बाद में स्वस्ति....ब्रुवन्तु "तत्पर ऋद्धि ब्रुवन्तु" इस प्रकार क्रमशः कहे ! बाद में यजमान व्रती ब्राह्मणों के साथ (अभाव में अकेला ही) स्वस्ति सूक्तादि मन्त्र का पाठ करें।

ॐ आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषिः सुतलं छन्दः कूर्म्मो देवता आसनोपवेशने विनियोगः।

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्॥

अनन्तर भूमि में त्रिकोणमंडल अंकित करके उसके चारो तरफ वृत्त और उसके चारो ओर चतुष्कोणमंडल जल से अंकित करके उसे गन्धपुष्पों से पूजा करें। मन्त्र यथा—

एते गन्धपुष्पे ॐ आधारशक्तये नमः, एते गन्धपुष्पे ॐ कूर्म्माय नमः, एते गन्ध-पुष्पे ॐ अनन्ताय नमः, एते गन्धपुष्पे ॐ पृथिव्यै नमः।

इसके बाद फट इस मन्त्र से अर्घ्यपात्र प्रक्षालन करके मंडल के ऊपर रखें। बाद में "ॐ" इस मन्त्र से उस पात्र को जल पूर्ण करके—मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, ओं सोममण्डलाय षोऽशकलात्मने नमः—कहकर पूजा करें।

उसके बाद पात्रस्थ जल तीन भाग करके उसके ऊपर गन्ध, पुष्प और दूर्व्वा प्रभृति देकर धेनु मुद्रा से अमृतीकरण, मत्स्यमुद्रा द्वारा आच्छादन एवं वक्ष्यमाण मन्त्र पाठ पूर्वक अंकुश मुद्रा से उस जल में सभी तीर्थों का आह्वान करें।

मन्त्र यथा—"ॐ गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धो कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।" अनन्तर ॐ इस मन्त्र को अर्घ्यपात्र के ऊपर दश बार जप करके अपने शिर पर एवं पूजा के उपकरण में उस जल को छिड़कें।

अनन्तर पुष्प पर हाथ रखकर "ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसंभवे। पुष्प चयावकीर्णे च हुं फट् स्वाहा" इस मन्त्र का पाठ करें। बाद में इस मन्त्र से अङ्गन्यास करें यथा—गां हृदयाय नमः, गीं शिरसे स्वाहा, गूं शिखाये वषट्, गैं कवचाय हुं, गौं नेत्रत्रयाय वौषट् गः करतल-पृष्ठाभ्यां फट्॥

अतः इस मन्त्र से करन्यास करें यथा—गां अंगुष्ठाभ्यां नमः, गीं तर्ज्जनीभ्यां स्वाहा, गूंमध्यमाभ्यां वषट्, गैं अनामिकाभ्यां हुं, गौं कनिष्ठाभ्यां वौषट् गः करतल पृष्ठाभ्यां फट्।

उसके बाद अपने हृदय में श्रीकृष्ण जी का चरणाम्बुज ध्यान करके भूत शुद्धि करें

एवं (बायें) ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परात्परगुरुभ्यो नमः, (दक्षिण) ॐ गणेशाय नमः, मध्ये ऐं श्रीगुरवेनमः इस प्रकार नमस्कार करें। उसके बाद इस मन्त्र का पाठ करें—

"ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदं। मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥"

तत्पर कूर्म्मंमुद्रा से हाथ में एक पुष्प लेकर गुरुदेव का ध्यान करें।

अथ गुरुध्यानम्

हृद्यम्बुजे कर्णिकामध्यसंस्थं सिंहासने संस्थितदिव्यमूर्त्तिम्।
ध्यायेद्गुरुं चन्द्रकलावतंसं सच्चितसुखाभीष्टवरप्रदानम् ॥
आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजबोधयुक्तम्।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं श्रीमद्गुरुं नित्यमहं भजामि।
तरुणादित्यसंकाशं तेजोबिम्बं महत्प्रभम्।
अनन्तानन्तमहिम-सागरं शशिशेखरम् ॥
महासूक्ष्मं भास्कराङ्गं तेजोराशिं जगद्गुरुम्।
महाशुक्लाम्बराब्जस्थं द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम् ॥
आत्मोपलब्धिविषयं तेजसे शुक्लवाससम्।
आज्ञाचक्रोर्ध्वनिकरं कारणञ्च सतां सुखम् ॥
धर्मार्थकाममोक्षाङ्गं वराभयकरं विभुम्।
प्रफुल्लकमलारूढ़ं सर्वज्ञं जगदीश्वरम् ॥
अन्त्यप्रकाशचपलं वनमाला विभूषितम्।
रत्नालंकारभूषाढ्यं देवदेवं भजाम्यहम् ॥ अथवा (स्मराम्यहम्)

हस्तस्थित पुष्प अपने शिर पर देकर हृदय में दो हाथ रखकर आँख मुदकर मानस पूजा करें। मानस पूजा—आसन हृदपद्म। शिरःस्थ अधोमुखसहस्त्रदलपद्म से गलित जो अमृत, वह पाद्य। अर्घ्य—मन। आचमनीय—उक्त अमृत। स्नानीयजल—उक्त अमृत। वस्त्र—देहस्थ आकाशतत्व। गन्ध—क्षितितत्व। पुष्प—चित्त (बुद्धि)। धूम—प्राण वायु। दीप—तेजस्तत्व। नैवेद्य—हृदय का कल्पित सुधा समुद्र। वाद्य—अनाहत ध्वनि (वक्षः स्थल का शब्द) चामर—वायुतत्व। छत्र—शिरःस्थ सहस्त्रदलपद्म। गीत—शब्दतत्व नृत्य—इन्द्रिय-कर्म। अर्थात् देह के अन्दर ही पूजा की सारी सामग्रियाँ मौजूद है वे सब मन ही मन सोचे। उसके बाद पुनः कूर्म्म मुद्रा से पुष्प लेकर पुनः ध्यान कर पुष्प गुरुदेव उपस्थित रहने पर गुरुदेव के चरणों में दे। और गुरुदेव उपस्थित न होने पर उस पुष्प को गुरुदेव के चरणों में अर्पण करें। गुरुदेव के फोटो न रहने पर पुष्प जल में या ताम्रपात्र में गुरुदेव के उद्देश्य से दे। उसके बाद षोडशादि उपचार से गुरुदेव की पूजा करें। उपचार

समूह लेकर क्रमशः निम्नलिखित मन्त्र समूह पाठ करते हुए श्री गुरुदेव के उद्देश्य से या साक्षात् उपस्थित उनको या उनके फोटो में चढ़ावें। यथा—

"ॐ रजतासनाय नमः", इस प्रकार तीन बार अर्चना कर "एतदधिपतये श्री विष्णवे नमः, एतत्संप्रदानाय श्री गुरवे नमः" मन्त्र से गन्ध पुष्प दे कर "ॐ सर्व्वान्तर्यामिने देव सर्वबीजमयं ततः। आत्मस्थाय परं शुद्धमासनं कल्पयाम्यहम् ॥ इदं रजतासनं ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ "ॐ यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवा ब्रह्महरादयः। कृपया देव देवेश मद्गृहे सन्निधिभव। अद्य ते परमेशान स्वागतं स्वागतं भवेत्। कृतार्थोऽनु-गृहीतोऽस्मि सफलं जीवितन्तुमे। यदागतोऽसि देवेश चिदानन्दमयाव्यय ॥ अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात् साधनस्यमे। यदपूर्णं भवेत् कृत्यत् तथापि सुमुखो भव ॥ श्री गुरुदेव स्वागतं ॐ सुस्वागतम् ॥ २ ॥ ॐ यद्भक्ति लेशसंपर्कात् परमानन्दसंभवः तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्यं शुद्धाय कल्पये। एतत्पाद्यं ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ ३ ॥ ॐ देवानामपि देवाय देवानां देवतात्मने। आचामं कल्पयामीश सुधां श्रुतिहेतवे ॥ इदमाचमनीयं ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ ४ ॥ ॐ तापत्रय हरं दिव्यं परमानन्द लक्षणं ॥ तापत्रयविमोक्षाय तवार्घ्यं कल्पयाम्यहं। इदमर्घ्यं ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ ५ ॥ ॐ सर्व कल्मषहीनाय परिपूर्णं सुधात्मक मधुपर्कमिमं देव कल्पयामि प्रसीद मे ॥ एष मधुपर्कं ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ ६ ॥ ॐ उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरण मात्रतः। शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम्। इदं पुनराचमनीयं ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ ७ ॥ ॐ स्नेहं गृहाण स्नेहेन लोकनाथ महाशय। सर्वलोकेषु शुद्धात्मन ददाति स्नेहमुत्तमम् ॥ इदं गन्धतैलं ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ ८ ॥ ॐ परमानन्द बोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्त्तये। साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीशते ॥ इदं स्नानीयं जलं ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ ९ ॥ ॐ माया-चित्रपटाच्छन्ननिजगुह्योरुतेजसे। निरावरणविज्ञान वासस्ते कल्पयाम्यहम्। इदं वस्त्रं ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ १० ॥ ॐ यामाश्रित्य महामाया जगत् संमोहिनीसदा। तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥ इदमुत्तरीयकं ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ ११ ॥ ॐ यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रोतमखिलं जगत्। यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये ॥ इदं यज्ञोपवीतं ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ १२ ॥ ॐ स्वभावसुन्दराङ्गाय नानाशक्त्याश्रयायते। भूषणानि विचित्राणि कल्पयाम्यमरार्च्चित इदमाभरणं ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ १३ ॥ ॐ परमानन्द सौरभ्यपरिपूर्णदिगन्तर। गृहाणपरमं गन्धं कृपया परमेश्वर। एष गन्धः ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ १४ ॥ ॐ तुरीय गुण संपन्नं नानागुणमनोहरम्। आनन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतामिद-मुत्तमम् ॥ इदं पुष्पं ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ १५ ॥ इस समय में नानाविध पुष्प और माल्यादि दान करें। बाद में ॐ वनस्पतिरसोत्पन्नो सुगन्धाढ्यो मनोहरः। आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ एष धूपः ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ १६ ॥ ॐ सुप्रकाशो महादीपः सर्वत्स्तिमिरापहा। सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ एष दीपः ॐ

ऐं श्री गुरवे नमः ॥ १७ ॥ ओं सत्पात्रशुद्धसुहविर्विविधानेक भक्षणम्। निवेदयामि देवेश सर्वतृप्तिकरं परम् ॥ एतेन्नेवेद्यं ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ १८ ॥ ॐ समस्त देव देवेश सर्वतृप्तिकरं परम्। अखण्डानन्दसंपूर्ण गृहाण जलमुत्तमम्। इदं पानार्थजलं ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ १९ ॥ बाद में पुनः आचमनीय दान का मन्त्र पढ़कर आचमनीय जल दे—इदमाचमनीयं जलं ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ २० ॥ ॐ तापत्रयहरं दिव्यं कर्पूरादि सुवासितम। मया निवेदितं देवताम्बुलमिदमुत्तमम् ॥ इदं ताम्बुल ॐ ऐं श्री गुरवे नमः ॥ २१ ॥ बाद में यथा शक्ति (ओं कम से कम १०८ बार १००८ होने पर अच्छा) गुरु मन्त्र जाप करे ओं गुह्याति गुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मद् कृतं जपं सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात् जनार्दन इस मन्त्र को पाठ कर थोड़ा सा जल हाथ में लेकर जल समर्पण करे। उसके बाद थोड़ा सा जल लेकर ओं इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहा-धर्म्माधिकारतो जाग्रतस्वप्नसुषुप्तावस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यद् स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तद् सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा। ॐ मां मदीयं सकलं सम्यक् ॐ ऐं श्री गुरुचरणे समर्पयेऽहं। ॐ तत्सद्"—(क्रम दीपिका ४ थे पटल ६९) इस मन्त्र पाठ पूर्वक श्री गुरुदेवचरण में आत्मसमर्पण करें। तत्पर मंगलारति नियम में आरति कर प्रणाम करे। प्रणाम मन्त्र यथा—

ॐ अखण्डमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्त्तिं।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्वमस्यादि लक्ष्यम् ॥
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधी साक्षिभूतं।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥

(इसके बाद श्री गुरुस्तोत्रम् पाठ करे) अनन्तर गुरुदेव के चरणामृत पान कर आशीर्वाद ग्रहण करें।

श्री गुरुदेव के चरणामृत पान का मन्त्र—ॐ अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्। गुरोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥

विशेष ज्ञातव्य

श्रीगुरुमाहात्म्य

श्री विष्णु या दूसरे देवदेवियों की पूजा के पूर्व सर्वप्रथम श्रीगुरुदेव की पूजा करनी

चाहिए। सर्व प्रथम गुरुपूजा न करने पर कोई भी पूजा सफल नहीं होती। श्री भगवान ने स्वयं कहा है—

प्रथमं तु गुरुः पूज्यस्ततश्चैव ममार्चनम्।
कुर्वन् सिद्धिमवाप्नोति ह्यन्यथा निष्फलं भवेत्॥

सर्व प्रथम गुरु जी की पूजा कर उसके बाद मेरी अर्चना करने पर सिद्धिलाभ कर सकते हैं, अन्यथा मेरी पूजा निष्फल होती है।

नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन च।
तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा॥

सर्वभूत की आत्मा मैं गुरुशुश्रूषा से जैसा प्रसन्न होता हूँ, वैसा यागयज्ञ, पुत्रोत्पादन, तपस्या या विषय वैराग्य के द्वारा नहीं होता। महादेव ने भी नारद से कहा है—

"आदौ ध्यात्वा गुरुं नत्वा संपूज्य विधिपूर्वकम्।
पश्चात् तदाज्ञामादाय ध्यायेदिष्टं प्रपूजयेत्॥
गुरुप्रदर्शितो देवो मन्त्रः पूजाविधिर्जपः।
न देवेन गुरुदृष्टस्तस्माद्देवाद गुरुः परः॥"

(ब्र : वै : पु: ब्र: ख: २६ अ: १०–११)

पहले गुरु जी का ध्यान प्रणाम और यथाविधि पूजा करके बाद में उनकी अनुमति ग्रहण करके इष्टदेव का ध्यान और पूजा करें। क्योंकि गुरु ही इष्टमन्त्र, पूजाविधि और जप प्रदान करते हैं और इष्टदेव के दर्शन कराते हैं, किन्तु इष्टदेव गुरु का दर्शन नहीं कराता, इस लिए इष्टदेव से गुरु ही श्रेष्ठ है।

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु प्रकृतिरीशाद्या गुरुश्चन्द्रोऽनलो रविः॥
गुरुर्वायुश्च वरुणो गुरुर्माता पिता सुहृत।
गुरुदेव परं ब्रह्म नास्ति पूज्यो गुरोः परः॥
अभीष्टदेवे रुष्टे च समर्थो रक्षणे गुरुः।
न समर्था गुरौ रुष्टे रक्षणे सर्वदेवताः॥
यस्य-तुष्टो गुरुः शश्वज्जयस्तस्य पदे पदे।
यस्य रुष्टो गुरुस्तस्य सर्वनाशश्च सर्वदा॥"

(ब्र: वै: पु: ब्रह्मखण्, २६: १२।१५)

गुरु ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर स्वरूप है। वही आद्याप्रकृति एवं चन्द्र, अनल, सूर्य, वायु, वरुण, माता, पिता, सुहृत एवं परम ब्रह्म है। अतएव गुरु जैसा पूज्य और कोई नहीं है। अभीष्टदेव रुष्ट होने पर गुरु रक्षा कर सकते हैं, किन्तु गुरु रुष्ट होने पर

समस्तदेवता भी रक्षा करने में समर्थ नहीं होते। जिसके प्रति गुरु प्रसन्न होते हैं उनके पद पद में जय और जिसके प्रति गुरु रुष्ट होते हैं उसका सर्वदा सर्वनाश होता है।

न सम्पूज्य गुरुं देवं यो मूढ़ो प्रपूजयेद्भ्रमात्।
ब्रह्महत्याशतं पापी लभते नात्र संशयः॥
सामवेदे च भगवानित्युवाचः हरिः स्वयम्।
तस्मादभीष्टदेवाच्च गुरुः पूज्यतमः परः॥

(ब्रः वैः पुः ब्रः खः २६ अः १६–१७)

जो मूर्ख व्यक्ति गुरु पूजा न करके भ्रमवशतः इष्टदेव की पूजा करते हैं उनको शत ब्रह्महत्या का पाप होता है, इसमें संदेह नहीं। स्वयं भगवान् हरि ने सामवेद में इस प्रकार कहा है। इसलिए अभीष्टदेव से गुरु पूज्यतम है।

गुरु को साक्षात् भगवान् जानकर पूजा करना होगा भगवान् ने ही खुद ऐसा कहा है यथा—

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्धयाऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥

भा० ११।१७।२७

आचार्य को (गुरु को) मेरा स्वरूप समझना। कभी भी उसकी अवज्ञा न करना, मनुष्य बुद्धि से उनका दोष दर्शन निषिद्ध है, कारण गुरु ही सर्व देवमय है! श्रुति ने भी कहा है—

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

जिसकी देव (इष्टदेव) में पराभक्ति है एवं जो इष्टदेव के समान गुरु में भी पराभक्ति रखता है उस महात्मा में ही पूर्व कथित श्रुति का प्रकाश होता है।

देवर्षि नारद युधिष्ठिर को उपदेश करते हैं—

यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ।
मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत्॥
एष वै भगवान् साक्षात् प्रधान पुरुषेश्वरः।
योगेश्वरैर्विमृग्याङ्घ्रिर्लोको यं मन्यते नरम्॥

(भाः ७।१५।२६–२७)

ज्ञानदीप प्रदानकारी साक्षात् भगवान् गुरु में जिनकी मर्त्य (मनुष्य) सदृश असद बुद्धि है, उनका शास्त्र श्रवण जप तपादि सभी कुछ हाथी स्नान जैसे निष्फल होता है। जो प्रधान (प्रकृति) है और पुरुषों का ईश्वर है जिसके चरणकमलों का अन्वेषण

योगेश्वरगण करते रहते हैं, वही साक्षात् भगवान् यह (देहधारी) गुरु हैं, लोक में इसी को जो मनुष्य रूप में सोचते हैं, अहो ! उन लोगों का क्या दुर्भाग्य—

"गु" शब्दस्त्वन्धकारः स्यात् "रु" शब्दस्तन्निरोधकः ।
अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ॥

"गु" शब्द का अर्थ है अज्ञान-अन्धकार, और "रु" शब्द से उसके निवारण को समझा जाता है; अतः अज्ञानान्धकार नाशक होने के कारण 'गुरु' यह शब्द बना है ।

ज्ञापयेद् यः परं तत्वं प्रापयेच्च परं पदम् ।
गमयेच्च परं धाम स गुरुः परमेश्वरः ॥

जो परतत्व का ज्ञान प्रदान करता है, परम पद को प्राप्त कराता है एवं परम धाम में पहुँचाता है वही गुरु परमेश्वर है गुरु में मनुष्य बुद्धि, मन्त्र में अक्षर बुद्धि एवं प्रतिमा में शिला बुद्धि करने पर नरकगामी होना पड़ता है। पिता-माता जन्मदाता होने से पूजनीय है किन्तु धर्माधर्म प्रदर्शक गुरुदेव तदपेक्षा भी पूज्य है। गुरु ही पिता, माता, देवता और एकमात्र गति है। शिव के रुष्ट होने पर गुरुत्राण कर सकते हैं, किन्तु गुरु के रुष्ट होने पर कोई भी त्राता नहीं हो सकता है। कायमनोवाक्य से गुरुजी का हित साधन करे। उनका अनिष्ट करने पर विष्ठा कृमि बनकर जन्म लेना पड़ता है। पिता शरीर-दाता है किन्तु गुरु ज्ञानदाता है। दुःखमय संसार सागर में गुरु से श्रेष्ठ कोई भी नहीं है। गुरुमुख विनिर्गत शब्दमय ब्रह्म नरकार्णव से परित्राण करते हैं। मन्त्र त्याग से मृत्यु, गुरु त्याग से दरिद्रता एवं गुरु और मन्त्र उभय त्याग से नरकगति प्राप्त होती है। जन्मदाता और ज्ञानदाता दोनों में ज्ञानदाता श्रेष्ठ हैं, पिता की अपेक्षा गुरु अधिक माननीय है, यही शास्त्रोपदेश है।

गुरु जी का आसन, शय्या, काष्ठपादुका, चर्मपादुका, पीठ, स्नानीय जल और छाया लंघन या स्पर्श नहीं करना चाहिए। गुरु जी के पास दूसरे की पूजा, उद्दण्डता, शास्त्र व्याख्या, पाण्डित्य, प्रभुत्वपरित्याग करें।

गुरु जी के साथ ऋण का आदान प्रदान, क्रय और विक्रय व्यवहार नहीं करना चाहिए।

सभी वर्णों के लोगों को बिना विचारे भक्ति से गुरु जी का उच्छिष्ट भोजन ग्रहण करना चाहिए।

गुरु जी के पादोदक पान करके मस्तक में धारण करने पर सर्वतीर्थ प्राप्ति का फल होता है। जप, होम, पूजादि और आवश्यक कार्य को छोड़कर अन्यत्र गुरु जी का नाम नहीं लेना चाहिए। वादानुवाद और साधन प्रणाली में आवश्यकता के मुताबिक गुरु जी को श्रीनाथ, देव या प्रभु कहकर आह्वान करें।

गुरु जी के निकट रहने पर तपस्या, उपवास, और व्रतादि कुछ भी आवश्यक नहीं है। तीर्थयात्रा और आत्मशुद्धि के लिए मन्त्र स्नानादि आवश्यक नहीं है।

गुरु जी को आदेश नहीं करना चाहिए, गुरु जो के प्रति कुभावना नहीं आनी चाहिए।

जिस स्थान में गुरु निन्दा होती हो, वहाँ से कर्ण आवृत्त करके तत्काल हट जाना चाहिए।

गुरु जी का कभी भी त्याग न करें; गुरु त्याग से दारिद्रय प्रभृति अनिष्ठ होता है। किन्तु जो गुरु कुचरित्रादिदोषदुष्ट और महापापी अथवा देवनिन्दक और शास्त्रद्वेषी हो उसका परित्याग कर सकते हैं।

गुरु को साधारण मनुष्य नहीं सोचना चाहिए—जो व्यक्ति गुरु को मनुष्य सोचता है, उनका मन्त्रोपासना और पूजा में कभी सिद्धि लाभ नहीं होता है।

इष्ट मन्त्र को देवता सोचना चाहिए, गुरु भगवत्स्वरूप है। गुरु में, मन्त्र में, और भगवान में कोई भी भेद नहीं है।

"दीक्षा की आवश्यकता"

बिना दीक्षा से मन्त्रजप दूषित होता है, अतः पहले दीक्षा का विषय निरूपण किया जा रहा है। दीक्षा से दिव्य ज्ञान लाभ और पापक्षय होता है। सभी आश्रमों में ही दीक्षा की प्रयोजनीयता है। दीक्षा ही जप, तप प्रभृति कार्यों का मूल है, दीक्षा के बिना जप तप आदि नहीं हो सकते हैं। दीक्षित न हो कर जप पूजादि करने पर वह सब पाषाण में रोपित बीज के जैसा निष्फल हो जाता है। दीक्षा विहीन व्यक्ति को सिद्धि या सद्‌गति लाभ नहीं होता। अदीक्षित व्यक्ति नरक में गमन करते हैं, उनका पिशाचत्व नहीं दूर होता है अतएव गुरु से दीक्षा ग्रहण करें। सद्‌गुरु के पास से यथाविधि दीक्षित होने पर क्षण काल में ही लक्ष उपपातक और कोटि महापाप नष्ट हो जाते हैं। गुरु के पास दीक्षित न होकर ग्रन्थ में मन्त्र प्रदर्शन पूर्वक उस मन्त्र के ग्रहण से सहस्त्र मन्वन्तर में भी अव्याहति (मुक्ति) नहीं है। अदीक्षित व्यक्ति तपस्या, नियम, व्रत, तीर्थगमन या शारीरिक परिश्रम से चाहते भी कोई कार्य सिद्ध नहीं कर सकता अदीक्षित व्यक्ति का मन्त्र विष्ठासम और जल मूत्र तुल्य है। तत्कृत श्राद्ध एवं उसके उद्देश्य में दूसरे के द्वारा किया गया श्राद्ध दोनों ही अधोगमन के कारक होते हैं। अतएव सद्‌गुरु से दीक्षित होने के उपरान्त ही सभी कर्म करना चाहिए।

मन्त्र के बारे में कुछ ज्ञातव्य विषय

प्रणव और प्रणव घटित मन्त्र शूद्र को देना निषिद्ध है। शूद्र को आत्ममन्त्र, गुरु जी

का मन्त्र, अजपा मन्त्र (हंस) स्वाहा और प्रणव संयुक्त मन्त्र अर्पण करने पर अधोगामी होना पड़ता है। शूद्र भी नरकगामी होता है। यही शास्त्रीय सिद्धान्त है।

गायत्री, प्रणव एवं लक्ष्मी मन्त्र (श्री) के परिज्ञान का स्त्री और शूद्र को अधिकार नहीं है। इन सब मन्त्रों के उच्चारण से वे अधोगामी होते हैं। किन्तु गोपाल-दशाक्षर और अन्नपूर्णा-सप्तदशाक्षर मन्त्र स्वाहा या प्रणव से संयुक्त होने पर भी स्त्री और शूद्र द्वारा जपा जा सकता है। मतान्तर में लिखित है कि गोपाल, महेश्वर, दुर्गा, सूर्य एवं गणेश का मन्त्र केवल ग्रहण करने के लिए शूद्र अधिकारी है। यथा—

गोपालस्य मनुर्देयो महेशस्य च पादजे।
तत्पत्न्याश्चापि सूर्यस्य गणेशस्य मनुस्तया।
एषां दीक्षाधिकारो स्यादन्यथा पापभाग् भवेत्॥

स्वाहा—प्रणव युक्त गोपालमन्त्र ग्रहण में सभी वर्ण, सभी आश्रम और नारी जाति का भी अधिकार है यह हमारे पूर्वाचार्य जगद्विजयी श्री केशवकाश्मिरी भट्ट जी महाराज ने निम्न वाक्यों में कहा है—

सर्वेषु वर्णेषु तथाश्रमेषु,
नारीषु नानाह्वजन्मभेषु,
दाता फलानामभिवाञ्छितानाम्,
द्रागेव गोपालक मन्त्र एषः॥
(क्रमदीपिका, प्रथम पटल ४ थे श्लोक)

नाम और जन्मनक्षत्र भिन्न-भिन्न होने पर भी सभी वर्ण, सभी आश्रम और नारी समूह के लिए यह गोपाल मन्त्र तुरन्त अभिवांछित फलदाता है।

'शब्द कल्पद्रूम' अभिधान में शूद्र जाति के लिए 'ॐ' प्रणव का प्रयोग देखा जाता है। सुतरं ॐ युक्त मन्त्र शूद्र और स्त्री जाति को दिया जा सकता है। ब्रज विदेही श्री महन्त श्री १०८ स्वामी सन्तदास काठिया बाबाजी महाराज ने अपने एक पत्र में लिखा है "द्विजाति के लिए ॐ मन्त्र व्यवहार की व्यवस्था साधारणतः शास्त्र में है समझना।" द्विजेतर जातियों के लिए भी ॐ की व्यवहार की व्यवस्था है (पत्रावली १म भाग, १२२ न, २०६–७ पृ०)।

मन्त्र शब्दार्थ—"मननात् त्रायते यस्मात्तस्मान्मन्त्रः प्रकीर्तितः।" जिनके मनन द्वारा (स्मरण उच्चारणादि से) संसार से उद्धार होते हैं उसका नाम मन्त्र है।

जप का नियम

दीक्षित व्यक्ति तुलसी काष्ठनिर्मित जप माला में जप करे। माला में कैसे जप करे

यह गुरुदेव के पास सिखें। जिसने केवल 'नाम' लिया है, वह व्यक्ति इच्छा करने पर माला से भी जप कर सकता है, कर से भी। कर में जप करने पर अनामिका के मध्य पर्व से आरम्भ कर कनिष्ठादि क्रम से तर्जनी के मूल पर्व तक इस दश पर्व में जप करना चाहिए। जपकाल में अंगुली वियुक्त न करके हाथ कुछ आकुञ्चन पूर्वक जप करें। अङ्गुली वियुक्त करने पर फल की हानि होती है।

संख्या रखकर जप करना चाहिए। अन्यथा जप निष्फल होता है। हृदय देश में बाये हाथ के ऊपर दक्षिण हाथ स्थापनपूर्वक अंगुलि कुछ टेढ़ी कर हस्तद्वयवस्त्र से आच्छादन पूर्वक दाये हाथ में जप (कर जप) करें। अक्षत, धान्य, पुष्प चन्दन और मृतिका से जप संख्या न रखें। माला में जप करने पर जप जेसे माला के द्वारा करते हैं उसी के जेसे पृथक माला से संख्या रक्खें। माला से संख्या रखने में असुविधा होने पर बायें हाथ की अंगुलियों के पर्व में रख सकते हैं, उसमें कोई दोष नहीं होगा, अथवा सुपारि या हरितकी से संख्या रख सकते हैं। जपान्ते श्री भगवान में जप समर्पण करें। मन्त्र यथा—

"गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव ! त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थिरा॥"

निरासने अथवा शयन समय में, गमन काल में, भोजन काल में व्याकुल एवं क्षुब्ध चित्त से, भ्रान्त या क्षुधार्त हो कर जप माला से या कर में जप न करें, हस्तद्वय आच्छादन न करके या मस्तक प्रवृत करके जप नहीं करना चाहिए। पथ या अमंगल स्थान में, अन्धकारावृत गृह में चर्मपादुका से पद-द्वय आवृत करके या शय्या पर बेठ कर माला से जप करने पर जप निष्फल होता है। पदद्वय प्रसारित करके या उत्कटासन में या यज्ञ काष्ठ पर, पाषाण या मृत्तिका पर बेठ कर जप न करें। जप के समय मार्जार, बगुला, कुक्कुर, वानर और गदर्भ इन सभी का दर्शन करने पर आचमन करें और स्पर्श करने पर स्नान करके जप समाप्त करें। इस प्रकार का नियम सभी जप में है, किन्तु मानस जप में कोई नियम नहीं है। गमन, अवस्थान और निद्रा काल में और शुचि या अशुचि अवस्था में मन्त्र स्मरणपूर्वक विद्वान व्यक्ति मानस जप का अभ्यास करें। मानस जप सभी स्थान में और सभी समय हो सकता है।

असंस्कारित माला से जप करने पर जप निष्फल होता है—और कर्ता के प्रति देवता रुष्ट होते हैं।

श्री गुदेरुव के उपदेशानुसार अंगुष्ठ; मध्यम और अनामिका इन तीन अंगुलियों से जप करें तर्जनी और कनिष्ठा से माला में स्पर्श न हो।

कार्पास सूत्र से माला गूँथकर उसमें जप करने पर धर्म अर्थ, काम और मोक्ष इस

चतुर्वर्ग की सिद्धि होती है। वह सूत्र ब्राह्मण कुमारी से निर्मित होने पर अधिकतर फलप्रद होता है।

श्री गुरुदेव से प्राप्त मन्त्र और माला का उपयोग इस प्रकार करें कि उस माला पर किसी अन्य मन्त्र का जप न करें और अन्य माला पर गुरु मन्त्र न जपें। जप काल में स्वीय अंग कंपन या माला कंपन निषिद्ध है। अंग कंपन से सिद्धि हानि और माला कंपन से सुख हानि होती है। जप काल में माला में शब्द न हो और हाथ से माला खिसकने न पावे।

जो व्यक्ति मलमूत्र का वेग धारण करके जप पूजादि करते हैं उनका जप पूजादि अपवित्र होता है। मलिन वस्त्र पहन कर केश और मुखादि दुर्गन्ध युक्त होकर जप करने पर देवता गुप्त रूप से उस जपकारी को नष्ट कर देते हैं। आलस्य जम्हाई (ओंघाई लेना) निद्रा, क्षुधा, थूक, भय, नीचे के अंगस्पर्श और क्रोध करना आदि का जप काल में परित्याग करें। देवता गुरु और मन्त्र के ऐक्य का ज्ञान करके एकाग्रमन से प्रातःकाल और सायं जितना हो सकें जप करें। पहले दिन जितनी संख्या जप करें तत्पर प्रत्येक दिन उतनी ही संख्या में जप करना चाहिए।

मौनी और पवित्र होकर मनः संयम एवं मन्त्रार्थ चिन्तनपूर्वक शुचिता से अव्यग्रचित्त होकर एवं क्लान्ति बोध न करके जप करने पर शीघ्र ही जप का फल लाभ होता है। उष्णीष (शिरोवेष्टन) या कुर्ता पहन करके, कण्ठावरण करके अथवा नग्न, मुक्तकेश हो कर या संगी गण से आवृत्त हो कर अपवित्र हाथ में, अपवित्र भाव से या बातचीत करते-करते जप नहीं करना।

आसन पर बैठ कर नित्य नियमित जप करने के बारे में ही यह नियम है। गमन काल में; शयन में आहार काल में या अन्य सभी समय मन ही मन जप करने में यह नियम पालन करना नहीं पड़ता है। इसलिये शास्त्र में कहा गया है—

"अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन स्वपन्नपि।
मन्त्रैकशरणो विद्वान् मनसैव सदाभ्यसेत्।
न दोषो मानसे जाप्ये सर्वदेशेऽपि सर्वदा॥"

गमन, अवस्थान और निद्राकाल में एवं शुचि या अशुचि अवस्था में मन्त्र का शरण ग्रहणपूर्वक विद्वान् व्यक्ति सदा मन ही मन जप करें। मानस जप सर्वत्र सर्वदा कर सकते हैं, उसमें कोई दोष नहीं है।

साधारणतः कम्बलासन पर बैठ कर जप-पूजादि कर सकते हैं शास्त्र में इस प्रकार देखा जाता है कि कृष्ण मृगचर्म पर ज्ञान सिद्धि, व्याघ्रासन पर मोक्ष और श्री लाभ होता है, कुशासन पर मन्त्र सिद्ध होता है। इसमें विचार या संदेह न करें।

मृत्तिकासन पर दु:खभोग, काष्ठासने दौर्भाग्य, वंशासने दारिद्रय, पाषाणसने रोग पीड़ज, तृणासने यशो-हानि, पत्रासने चित्त विभ्रान्ति होता है। वस्त्रासन पर जप ध्यान और तपस्या को हानि होती है। अन्य तन्त्रों में कहा गया है वस्त्रासन रोगनाशक। भगवान् श्रीकृष्ण गीताजी में कहा है—कुशासन के ऊपर मृगचर्म तदुपरि पशम अथवा रेशम के वस्त्र बिछा कर उप आसन पर बैठ कर साधन करें। अतएव निषिद्ध स्थल में केवल मात्र वस्त्रासन पर बैठ कर साधनादि न करें। इस प्रकार उपदेश ही समझे।

गौतमीय तन्त्र में कहा है—

"तथा मृद्वासने मन्त्री पटाजिन कुशोत्तरः।"

मन्त्र साधक वस्त्र, चर्म अथवा कुशासन नीचे आस्तरण करके तदुपरि कोमल आसन बिछाकर उसके ऊपर बैठें। कृष्णसार चर्म में अदीक्षित गृही उपवेशन न करे। यति वानप्रस्थी, ब्रह्मचारी और भिक्षुक ही कृष्णसारजिन पर बैठें।

जप निष्ठ द्विजश्रेष्ठ व्यक्ति समस्त यज्ञ फल का लाभ करते हैं, कारण समस्त यज्ञापेक्षा जपयज्ञ ही महाफलप्रद है। जप से देवता प्रसन्न होते हैं एवं प्रसन्न हो कर विपुल काम्यवस्तु और शाश्वतमुक्ति तक प्रदान करते हैं। यक्ष, रक्ष, पिशाच, ग्रह एवं भीषण सर्पगण तक भयभीत हो कर जापक व्यक्ति के पास आगमन नहीं कर पाते हैं।

जपकाल में विषय चिन्ता परित्याग करके मन्त्रार्थ भावना करते हुए नातिद्रुत और नाति बिलम्बित भाव से मुक्ताहार के जैसे पर्यायक्रम से जप करे। जप त्रिविध होते हैं—मानसिक, उपांशु और वाचनिक। जप अर्थ में मन्त्राक्षर की आवृत्ति, त्रिविध जप में ही हो सकती है। मन्त्रार्थ स्मरणपूर्वक मनसा मन्त्र उच्चारण को मानसिक जप कहलाता है। जिह्वा और ओष्ठ का किंचित परिचालना करके अपने ही श्रवण करने की विधि से मन्त्र उच्चारण करने को उपांशु कहा जाता है। उभय में प्रभेद इतना ही है कि एक अश्राव्य है और दूसरा कर्णगोचर। वाक्य रूपी मन्त्र उच्चारण को वाचिक जप कहा जाता है, वाचिक जप से उपांशु जप में दश गुण, मानसिक जप में सहस्त्र गुण अधिक फल मिलता है। वाचिक जप अधम, उपांशु जप मध्यम एवं मानस जप उत्तम है। अति बिलम्बित जप में व्याधि और अतिद्रुत जप में धन नाश होता है। अतएव अक्षर-अक्षर में योग करके मुक्ता माला की नाई समरूप से जप करें। जो व्यक्ति मनसा स्तवपाठ और सुस्पष्ट रूप से मन्त्र जप करता है, उनका वह स्तव और मन्त्र भग्न भाण्डस्थ जल के जैसा विगलित होता है।

नाम और दीक्षा में प्रभेद

दीक्षा सम्बन्ध में गौतमीय तन्त्र में इस प्रकार कहा गया है कि—

"ददाति दिव्यभावं यद् क्षिणुयात् पापसन्ततिम्।
तेन दीक्षेति विख्याता मुनिभिस्तन्त्रपारगैः॥"

जिससे दिव्य भाव उद्भूत हों एवं पाप समूहों का क्षय हो उसे ही तन्त्र शास्त्र विशारद मुनिगण कर्तृक दीक्षा नाम से अभिहित करते हैं। (दीक्षा के बारे में देवर्षि नारद के प्रति महादेव का उपदेश "देवर्षि नारद और उनकी उपदेशावली" नामक ग्रन्थ के ११४ पृ० से कुछ पत्रों में देखें।)

दीक्षा ग्रहण करने पर कण्ठि माला और तिलकादि अवश्य ही धारण करें एवं आहार सम्बन्ध में कुछ विधि निषेध का भी पालन करें। जैसे मांस, अण्डा, प्याज लहसून, मद्य इत्यादि का आहार निषिद्ध है। नाम ग्रहण में इसके पालन करने का विशेष बाध्य बाधकता नहीं है। अतः जो उक्त नियम पालन में असमर्थ है, उनको पहले भगवत् नाम दिया जाता है। नाम जप करते-करते चित्त क्रमशः निर्मल होने पर जब बाहर की निन्दा स्तुति के प्रति लक्ष्य नहीं रह जाता और सब नियमादि पालन के लिए अन्तर्मन प्रस्तुत हो जाता है तब मनुष्य दीक्षा ग्रहण का अधिकारी होता है और तभी उसको दीक्षा दी जाती है। दीक्षा से विशेष गुरुशक्ति संचार होता है, नाम से तद्रूप नहीं होता; एवं दीक्षा में शिष्य को श्री भगवान के चरण में सम्पूर्ण रूप से समर्पित किया जाता है। तब वह भगवान का दास हो जाता है। अर्थात् घृत को जैसे अग्नि में आहुति देते हैं, वैसे ही गुरु शिष्यरूप घृत को ब्रह्मरूप अग्नि में आहुति प्रदान करता है। अग्नि में घृत आहुति देने पर जैसे अग्नि उस घृत को सम्पूर्ण रूप में आत्मसात् कर लेता है, फिर घृत को फिर अग्नि से लौटा नहीं सकते हैं, तद्रूप ब्रह्मरूप अग्नि में शिष्य घृत को गुरु आहुति देने पर भगवान् उनको सम्पूर्ण रूप से आत्मसात् कर लेता है। तब शिष्य का और कुछ स्वातन्त्रय नहीं रह जाता एवं वह शिष्य भगवदीय हो जाता है। द्वादश अंगों में गोपी चन्दन से तिलक तब शिष्य को धारण करना पड़ता है और कण्ठ में तुलसी की कण्ठीमाला आवश्यक हो जाती है। इसके अलावा दीक्षा ग्रहण करने पर विशुद्ध आहार करना पड़ता है। भगवत् प्रसाद को छोड़कर और कुछ भी आहार ग्रहण नहीं कर सकते हैं। जो व्यक्ति ये सब नियम-पालन करने में असमर्थ या अनिच्छुक हैं उनको दीक्षा देने पर उस नियम के पालन न करने के लिए उनका विशेष अपराध और पाप होता है। इसलिए उनके कल्याण के निमित्त गुरु उनको पहले नाम देते हैं। बहुत से लोग कहते हैं कि बाहर लोगों को दिखाने के लिए तिलक करने का क्या प्रयोजन है, यह कपटाचार है। हृदय भाव-शुद्ध रहना ही जरूरी है किन्तु वे प्रकृततत्व नहीं जानते हैं अतः ऐसा कहते हैं। प्रकृततत्व यह है कि दीक्षा होने पर यह देह सम्पूर्ण रूप में भगवान् में समर्पित हो जाता है तब इस देह को सर्वदा पवित्र रखना पड़ता है। गोपीचन्दनादि से तिलक और तुलसी की कण्ठी इत्यादि धारण करने पर शरीर सर्वदा पवित्र रहता है। देह के द्वादश स्थानों में जो तिलक करते हैं, उसका तात्पर्य यह है कि देह के उस द्वादश स्थानों में गोपीचन्दन से मन्दिर प्रस्तुत करते हैं एवं उनके अन्दर मन्त्र से विन्दु देकर

भगवान् को बैठाते है (इसी को तिलक कहते हैं), उसके कारण भगवान् देह के चारों ओर रहकर आश्रित जन की सर्वदा सर्वावस्था में रखवाली करता है। अधिक क्या, उस आश्रित जन का तिलक देख करके उसे भगवान् का दास समझकर भूतप्रेतादि में से भी कोई कुछ भी अनिष्ट नहीं कर पाता, इतना ही नहीं उसका स्पर्श यमराज तक करने का साहस नहीं करते। इस बारे में एवं इसके फल सम्बन्ध में शास्त्रों में बहुत उपदेश है, उससे कुछ यहाँ लिख रहे हैं—

[तिलक और कण्ठी धारण का]

माहात्म्य

काशी खण्ड में उक्त है कि, यमराज ने स्वयं अपने दूतों से कहा है—

दूता ! शृणुत यद्भालं ! गोपीचन्दनलाञ्छितम् ।
ज्वलदिन्धनवत् सोऽपि दूरेत्यज्यः प्रयत्नतः ॥

हे दूतगण ! मेरी बातें सुनो; जिसका ललाट गोपीचन्दन से चिहिनत होता है वह प्रज्वलित अग्नि जैसा है, उसे तुम सब छोड़ देने के लिए बाध्य हो।

पद्मपुराण में उक्त है कि—

"मत्पूजा होमकाले च सायं प्रातः समाहितः ।
मद्भक्तो धारयेन्नित्यमुर्द्धपुण्ड्रं भयावहम् ॥"

भगवान् कहते हैं मेरे भक्त प्रातःकाल और सायं काल यमदूतादि के लिए भयप्रद उर्द्धपुण्ड्र नित्य धारण करें। विशेषतः मेरी पूजा होमादि के समय तिलक अवश्य ही धारण करें।

गरुड़ पुराण में देवर्षिनारदजी ने गोपीचन्दन के तिलक सम्बन्ध में ऐसी उक्ति की है—

"यो मृत्तिकां द्वारावतीसमुद्भवां
करे समादाय ललाटके बुधः ।
करोति नित्यं त्वथ चोर्द्धपुण्ड्रकं
क्रियाफलं कोटिगुणं सदा भवेत् ॥
श्रद्धाविहीनं यदि मन्त्रहीनं-
श्रद्धाविहीनं यदि कालवर्जितम् ।
कृत्वा ललाटे यदि गोपीचन्दनं
प्राप्नोति तत्कर्मफलं सदाऽक्षयम् ॥"

जो विवेकी पुरुष नित्य द्वारावती समुद्भूत गोपीचन्दन हाथों में लेकर (घीसकर)

उससे उर्द्धपुण्ड्र (तिलक) धारण करता है। उसका क्रियाफल सर्वदा ही कोटि गुण युक्त होता है।

यदि क्रिया (पूजादि) विषय में अभिज्ञता न रहे, क्रिया का मन्त्र न जाने, श्रद्धा भी वैसी न रहे एवं यथाकाल में यह कृत न होवे तो भी यदि ललाट में गोपीचन्दन का तिलक करके क्रिया करते हैं, तब वे सदा ही उस क्रिया का फल प्राप्त करते हैं।

पद्मपुराण में यह भी उक्त हुआ है कि—

उर्द्धपुण्ड्रविहीनस्तु सन्ध्याकर्मादिकं चरेत्।
तत्सर्वं राक्षसं सत्यं नरकं घोरमाप्नुयात्॥
गोपीचन्दनसंपर्कात् पूतो भवति तत्क्षणात्।
गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो दृष्टश्चेतदघं कुतः॥

उर्द्धपुण्ड्र (तिलक) धारण न करके सन्ध्याकर्मादि करने पर उसे राक्षस ग्रहण करते हैं एवं वे कर्ता घोर नरक में गमन करते हैं, यह निश्चित सत्य है। और जो गोपीचन्दन का तिलक धारण करता है, वह तत्क्षण पवित्र हो जाता है। इतना ही नहीं गोपीचन्दन का तिलक जिन्होंने धारण किया है उनके दर्शन से भी दर्शक का पापक्षय होता है।

तुलसी की कण्ठी माला धारण करने के सम्बन्ध में शास्त्र वाक्य निम्न उद्धृत कर रहे हैं।

पद्म और स्कन्धपुराण में उक्त हुआ है कि—

"यज्ञोपवीतवत् धार्य्या सदा तुलसीमालिका।
नाशौचं धारणे तस्या यतः सा ब्रह्मरूपिणी॥"

तुलसी माला (कण्ठी) यज्ञोपवीत के जैसा सदा कण्ठ में धारण करें। यह तुलसी माला ब्रह्मस्वरूपिणी है, इसलिये इसके धारण में अशौच नहीं होता अर्थात् जो कण्ठ में तुलसी की कण्ठीमाला धारण किया रहता है, वह सदा पवित्र होता है।

नारद पाञ्चरात्र में है—

"अशौचे चाप्यनाचारे कालाकाले च सर्वदा।
तुलसीमालिकां धत्ते स याति परमां गतिम्॥"

काल में, अकाल में, अशौच काल में अनाचार काल में सभी समय तुलसीमालिका जो धारण करते हैं। वे परमागति लाभ करते हैं। विष्णु धर्म में स्वयं भगवान की उक्ति भी इसी प्रकार ही है जैसे—

"तुलसीकाष्ठमालाञ्च कण्ठस्थां वहते तु यः।
अप्यशौचो ह्यनाचारो मामेवेति न संशयः॥"

भगवान ने स्वयं कहा है—जो सर्वदा अशौच और अनाचार अवस्था में भी तुलसी माला कण्ठ में धारण करते हैं, वे मुझे ही प्राप्त होते हैं कोइ संशय नहीं है।

स्कन्धपुराण में कहा गया है कि—प्रेतराज (यम) के दूतगण तुलसी काष्ठ की माला दूर से देख कर ही नाश को प्राप्त होते हैं।

"तुलसीकाष्ठमालां तु प्रेतराजस्वदूतकाः।
दृष्ट्वा नश्यन्ति दूरेण वातोद्भूतो यथा रजः॥"

जैसे सरकार के चापरास युक्त (निशान) युक्त व्यक्ति को देखकर सभी कोई पहचान सकते हैं कि ये सरकार के लोग हैं। इनके प्रति किसी प्रकार का अन्यायपूर्ण व्यवहार करने पर सरकार यह अन्याय अपने प्रति किया गया है ऐसा समझकर उसके लिए कठोर दण्ड दिया करती है। इसलिये सरकारी पोपाकादि और चापरास युक्त व्यक्ति के प्रति कोई भय से किसी प्रकार अन्याय करने का साहस नहीं करता है। किन्तु उसी व्यक्ति के यदि शरीर में सरकारी चपरास न रहे, तब उसके प्रति कोई भी अन्याय व्यवहार कर सकता है, तब वह अन्याय व्यवहार सरकार अपने प्रति नहीं समझती। इस स्थल पर तिलकादि को तद्रूप ही विश्वनियन्ता जगदीश्वर का चापरास समझना होगा।

मन्त्रार्थ

प्रायः यह देखा जाता है कि दीक्षा के समय गुरु मन्त्र का अर्थ उपदेश करने पर भी दीक्षित व्यक्तियों के बीच बहुतों को मन्त्रार्थ याद नहीं रहना है, कुछ लोग गुरु मन्त्रार्थ गुरु मुख से उपदिष्ट न होने के कारण नहीं भी जानते हैं, इसलिये निम्बार्क सम्प्रदाय के दीक्षितगणों की सुविधा हेतु इस ग्रन्थ में मन्त्रार्थ लिपिबद्ध किया जा रहा है।

श्री निम्बार्कसम्प्रदाय में प्रचलित मन्त्र समूह के मध्य शिष्यों को प्रधानतः चार कृष्ण मन्त्र में से किसी एक मन्त्र की दीक्षा प्रदान की जाती है। ये चार मन्त्र इस प्रकार हैं—(१) और (२) अष्टादशाक्षरी और दशाक्षरी गोपाल मन्त्र (३) द्वादशाक्षरी वासुदेव मन्त्र और (४) अष्टादशाक्षरी मुकुन्द शरणागति मन्त्र।

श्री गुरु इस मन्त्र समूह के मध्य से जिस शिष्य को जिस मन्त्र का अधिकारी समझते हैं उसे वह मन्त्र प्रदान करते हैं। मन्त्रार्थ के साथ मन्त्र जप करना चाहिए (तज्जपस्तदर्थभावनम्) पातञ्जल योग सूत्र समाधिपाद २८। मन्त्रों के अर्थों के साथ मन्त्र जप करने पर शीघ्र फल प्राप्त होता है। अतएव मन्त्र प्राप्त व्यक्ति को मन्त्रार्थ अवगत होना एकान्त प्रयोजन है। श्री निम्बार्कसम्प्रदाय में उपर्युक्त चार मन्त्र गृहस्थ और विरक्त दीक्षा में विशेष रूप से प्रचलित हैं अतः उन चारो का मन्त्रार्थ यहाँ दिया जा रहा है। जिनको जैसा मन्त्र प्राप्त हुआ हो वे अभीष्ट मन्त्रार्थ यहाँ से जान ले सकते हैं।

मन्त्र और उसका अर्थ गोपन रखना आवश्यक है, यही नियम है। मन्त्र और मन्त्रों के अर्थ ग्रन्थ में प्रकाश करने पर इसे सभी कोई को जानने की सम्भावना है, सुतरां यह प्रकाश करना संगत नहीं है। क्योंकि इस प्रकार बहुतों को मालूम हो सकता है। किन्तु मन्त्र और मन्त्रार्थ श्री निम्बार्काचार्य जी के लिखे "मन्त्र रहस्य षोडशी" और "प्रपन्नकल्प-वल्ली" नामक ग्रन्थों में प्रकाशित हैं, तब इस ग्रन्थ में उनका प्रकाशन करके कुछ नया नहीं किया जा रहा है। विभिन्न तन्त्रग्रन्थों में तो प्रायशः सभी मन्त्र मुद्रित हुए हैं एवं मन्त्रों का अर्थ भी लिखा है। एक बात ग्रन्थ पाठ करके मन्त्र और मन्त्रार्थ जानने पर भी, जो गुरु से मन्त्र नहीं प्राप्त किया है, उसे इससे कुछ भी फल नहीं होगा। किन्तु जिसने गुरु के पास से मन्त्र प्राप्त किया है और उसे उसका अर्थ पता नहीं है या नहीं जानता है, वह ग्रन्थ से मन्त्रार्थ जानने पर बहुत ही उपकृत और कल्याण सिद्ध होगा, इस पर विचार कर मन्त्र और मन्त्रार्थ का प्रकाशन इस ग्रन्थ में किया जा रहा है। अष्टदशाक्षरी "क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा" इस गोपाल मन्त्र का अर्थ गोपालतापनी उपनिषद में एवं विभिन्न तन्त्र में उपदिष्ट हुआ है। ग्रन्थ विस्तार के डर से वे सब अर्थ यहाँ न लिखकर श्री निम्बार्काचार्य द्वारा रचित मन्त्र रहस्य षोडशी पर और उसके टीकाकार श्री सुन्दरभट्टाचार्य जी की टीका में जैसा अर्थ किया गया है एवं परम्परा क्रम से जो अर्थ उपदिष्ट हुआ आ रहा है वही अर्थ यहाँ लिपिबद्ध किया जा रहा है—

"अ", "उ", "म" ये तीन अक्षर मिलकर "ओं" हुआ है। "अ" कार का अर्थ विष्णु, "उ" कार का अर्थ गुरु, मकार का अर्थ जीव समूह। क्ल, कृ, ई, म, इन तीन अक्षर मिलकर "क्लीं" हुआ है, ("र" और "ल" सवर्ण कृ स्थान में क्ल आदेश हुआ है—कृष्ण शब्द का बीज "कृ"), क्ल का अर्थ कृष्ण (जैसे "ओं" इसका अन्तर्गत "अ" का अर्थ विष्णु तद्रूप "क्लीं" इसके अन्तर्गत क्ल का अर्थ पुरुषोत्तमादि शब्दवाच्य श्री कृष्ण), "ई" का अर्थ गुरु "म" का अर्थ जीव समूह, यह पहले ही कहा गया है। "ओं" का अर्थ और "क्ली" का अर्थ एक ही हुआ। ब्रह्मवादिगण "क्ली" बीज और "ओं" कार इन दोनों का ऐक्य प्रतिपादन किया है (क्लीमोङ्कारस्यैकत्वं पठ्यते ब्रह्मवादिभिः—गोपालतापनी उत्तर भाग ५९।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि "ओं" और क्लीं एक ही अर्थ होने पर ओंकार एवं क्लीं ये दोनों मन्त्र में युक्त रहने पर अर्थ का पुनरुक्ति दोष होता है। सुतरां पुनरुक्ति न करके "ओं" और क्लीं इन दोनों के बीच एक ही को मन्त्र में युक्त करना उचित है। उसका उत्तर यह कि उभय एकार्थक होने पर भो मंगल और ओंकार का अखण्डार्थ। सुतरां "ओं" कार अखण्डार्थक होकर शास्त्र का और मन्त्र के प्रारम्भ में मंगल के निमित्त भी पठित हुआ है। उसमें भी प्रश्न हो सकता है कि मंगलार्थक अन्य शब्द भी तो हैं?

वे दूसरे मंगलार्थक शब्द भी तो मन्त्र के प्रारम्भ में युक्त किये जा सकते थे, इस प्रकार एकार्थक "ओं" कार युक्त करने का क्या प्रयोजन है। उसका उत्तर यह कि, केवल मंगलसार्थक ही नहीं अपितु यह भगवान का नाम भी है, श्रीमद्भागवदगीता में भी "ओं" तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः (१७।२३) "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म" (८।१३) इत्यादि वाक्य में भगवान ने स्वयं यह कहा है। और "ओं" कार का अर्थ दूसरे भी शास्त्र में उपदिष्ट हुआ है, जैसे शास्त्र में कहा गया है—"ओं" कार का अर्थ (स्थिति और पालनकर्ता) विष्णु, उकार का अर्थ (लयकर्ता) महेश्वर एवं मकार का अर्थ (सृष्टिकर्ता) ब्रह्मा-प्रणव से ये तीन अर्थ ही कहा गया है।[1]

"क्लीं" इस बीज मन्त्र का उपर्युक्त अर्थ कहकर श्री निम्बार्क भगवान ने कहा है—क्लीं मन्त्र बीज का शेषाक्षर 'म' कार का अर्थ जीव स्वीय आत्मा को घृतस्थानीय करके मध्यम अक्षर "ई" कार के अर्थ गुरु को अर्पणस्थानीय अर्थात स्त्रुव रूप में कल्पना करके प्रथम अक्षर "क्ल" का अर्थ ब्रह्म रूप अग्नि में उस अपनी आत्मा को होम करें। विवेकी पुरुष इस प्रकार आत्मा की आहुति प्रदान करने पर कृत कृत्य होते हैं (उनका जो कुछ कर्तव्य कर्म तत्समस्त इससे कृत होकर उनका और कर्तव्य कर्म कुछ असमाप्त नहीं रहता है)। वे भवबन्धन से सम्पूर्णरूपेण मुक्त हो कर ब्रह्मसायुज्य लाभ करते हैं।[2]

अष्टादशाक्षर मन्त्र का अवशिष्ट सभी ही (कृष्णाय, गोविन्दाय, गोपीजनवल्लभाय स्वाहा—ये सभी अंश ही") "क्लीं" बीज का विवरण स्वरूप है। शाखा-पल्लवसंयुक्त वृक्ष जैसे बीज में (सूक्ष्मरूपेण) अवस्थित रहता है, उसी प्रकार सर्वशास्त्रार्थ मन्त्र बीज में निहित रहता है।[3]

उस अवशिष्ट चार पदों के मध्य "कृष्णाय" पद के द्वारा लक्षण को द्वार करके स्वरूप, गुण और शक्ति का विधान किया है एवं द्वितीय "गोविन्दाय" पद से उस विषय में प्रमाण निरूपण किया है। तृतीय "गोपीजनवल्लभाय" पद से मुमुक्षु गुरु के साथ

१. "ओंकारो विष्णुरुदिष्ट उकारस्तु महेश्वरः।
मकारेणोच्यते ब्रह्मा प्रणवेन त्रयो मताः॥"

२. "चरमार्थं हविः कृत्वा मध्यमञ्चार्पणन्तथा।
प्रथमार्थे च ब्रह्माग्नावात्मानं जुहुयान्नरः॥
हुत्वात्मानं बुधश्चैवं कृतकृत्योऽभिजायते।
भवबन्धविनिर्मुक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात्॥" (मन्त्र रहस्य षोडशी ८, ९)

३. "बीजे यथा स्थितो वृक्षः शाखापल्लवसंयुतः।
तथैव सर्वशास्त्रार्थो मन्त्रबीजे व्यवस्थितः॥"

योग और चतुर्थ "स्वाहा" पद से आत्महोम का विधान किया है, "कृष्णाय पद से किस रूप में लक्षण को द्वार करके स्वरूप, गुण और शक्ति एवं "गोविन्द" पद के द्वारा प्रमाण निरूपण किया गया है, वही यहां दिखाया जा रहा है।

"कृष्ण" शब्द द्विविध प्रयुक्त है—सखण्डार्थक और अखण्डार्थक, सखण्डार्थक भी द्विविध है—व्याकरणव्युत्पन्न और ऋषिव्युत्पन्न। व्याकरण-व्युत्पत्ति इस प्रकार है— "कृष्णाय" पद चतुर्थ्यन्त और चतुष्पद विशिष्ट। कृ, कृष, ण, अ इन चारों को मिलाकर कृष्ण हुआ है। उसमें कृ धातु का अर्थ करण (डुकृञकरणे), कृष धातु का अर्थ विलेखन (संहरण); इन दोनों के परे क्विप् प्रत्यय करने पर 'कृ कृष' इस प्रकार की स्थिति होती है, इसमें जो द्वितीय कृ शब्द है, उसका लोप होने पर "कृष" यह शब्द रहता है। उसका अर्थ है—सृष्टिकर्ता और संहारकर्ता। "ण" "वस्तुलाभकरो णश्च" इस वाक्य से ण शब्द का अर्थ मोक्षलाभकर। "अव" धातु का अर्थ रक्षण (अव रक्षणे) उस "अव" धातु के परे "क्विप्" प्रत्यय करने पर "अ" होता है; अतएव "अ" का अर्थ रक्षक। अतएव "कृष्ण" (कृ, कृष, ण, अ) शब्दों का व्याकरणव्युत्पत्ति के द्वारा कृष्ण का जगत् कर्तृत्व संहर्तृत्व, मोक्षदातृत्व और रक्षकत्व अर्थ होता है।

कृष्ण शब्द का ऋषि व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

"कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः, तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते" कृषि (कृष धातु) भूवाचक शब्द और "ण" सुखवाचक; उन दोनों का ऐक्य ही परं ब्रह्म एवं उस परं ब्रह्म को ही कृष्ण नाम से अभिहित किया जाता है।

कृष्ण शब्द का अखण्डार्थत्व श्रुति में कहा गया है, जैसे—"सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकारिणे।" (गोपालतापनी–पूर्व भाग १)

इस प्रकार ब्रह्म सूत्रकार का "जन्माद्यस्य यतः" सूत्रोक्त "जगज्जन्मादिकारणत्व" लक्षण श्रीकृष्ण में समन्वित हुआ है।

अतएव कृष्ण पद को लक्षण के द्वार करके यही सिद्ध हुआ कि, जगत का सृष्टि कर्ता, स्थिति और लय का कारण, मोक्षदाता सभी का रक्षक, सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वज्ञाता, वात्सल्यादि अनन्त असंख्य स्वाभाविक गुण और शक्त्यादि से पूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण पदार्थ से अभिन्न बीजान्तर्गत "क्ल" पदार्थ। श्रीकृष्ण का गुण हुआ—ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, तेज, वीर्य इत्यादि—जो जगत की सृष्टि स्थिति और लय के उपयोगी; वात्सल्य, सौशील्य, स्वामित्व, सत्यप्रतिज्ञत्व, कृतज्ञत्व, स्थैर्य, पूर्णत्व, औदार्य, कारुण्य प्रभृति— जो भगवान् के आश्रयग्रहण में भी शरणागत के रक्षण में भी उपयोगी अनन्त एवं आर्जव, मार्दव, सौहार्द और शरण्यत्वादि यहां तक लक्षण को द्वार करके "कृष्ण" पद में स्वरूप, गुण और शक्ति से बीजान्तर्गत "क्ल" का अर्थ विस्तार दिखाया गया।

अभी "गोविन्द" पद से कैसा प्रमाण निरूपण किया गया है ऐसा दिखाय जा रहा है। गो शब्द का अर्थ वेद, वेद को अपने में प्रमाण से प्राप्त होते हैं। गां वेदरूपां स्वस्मिन् प्रमाणतया विन्दते। इस अर्थ में गोविन्द अर्थात् वेद ही तादृश कृष्ण में प्रमाण है। कारण, "सर्व्वे वेदा यत्पदमानन्ति", वेदैश्च सर्वैरहीमेववेद्यः "इत्यादि श्रुति भी यही है। अथवा गोभूमिवेदविदितः यह श्रुति कहती है। गो में अर्थात् सूर्य में, भूमि में और वेद में विदित अतः गोविन्द।" यः आदित्यतिष्ठन् इत्यादि श्रुति कहती है गो अर्थात् सूर्य तत्प्रकाशक रूप में अथवा तदन्तरात्मरूप में विदित इस अर्थ में गोविन्द। यः पृथिव्यां तिष्ठन् "इत्यादि श्रुति कहती है गो अर्थात् भूमि में उनकी शक्ति रूप में विदित इस अर्थ में भी गोविन्द।" सर्वे वेदा यत्पदम रामनन्ति "इत्यादि श्रुति कहती है गो समूह में अर्थात वेद समूह में तत्प्रतिपाद्यरूप में विदित इस अर्थ में गोविन्द।" इस प्रकार गोविन्दाय, पद से तादृश कृष्ण में प्रमाण निरूपण किया गया है।

गोपी शब्द का अर्थ प्रकृति, उससे उत्पन्न—देहेन्द्रियादि के साथ संयुक्त होता है—इस अर्थ में "गोपीजन" शब्द का अर्थ जीवात्मसमूह "वल्ल" अर्थात् अज्ञान (नाश करके) "भ" (भाति) इसका अर्थ ज्ञान प्रकाशित करना, अतएव संपूर्ण "गोपीजनवल्लभ" पद का अर्थ हुआ—जीव समूह का अज्ञान जो गुरु रूप होकर ब्रह्म विद्या की सहायता से निराकृत करके स्व एवं परतत्व विषयकज्ञान को प्रकाशित करे। "गोपीजनवल्लभ" शब्द में जो चतुर्थी विभक्ति है उसका अर्थ "उसे"। "स्वाहा" पद का अर्थ होम करना आत्मसमर्पण करना।

अतएव इस "गोपीजनवल्लभ" पद से "क्लीं" बीज के अन्तर्गत "ई" कारार्थ गुरु के साथ उनका अन्तिम मकारार्थ जीव का योग होने की बात कहने से इस "गोपीजनवल्लभ" पद से बीज के मध्यस्थ ईकार और अन्तिममकार का विस्तार किया गया है, ऐसा समझना होगा सम्पूर्ण मन्त्र का अर्थ हुआ—

जो जगत की सृष्टि, स्थिति और लय का कारण, मोक्षदाता सभी का रक्षक, सच्चिदानन्द स्वरूप, जो जगत की सृष्टि, स्थिति और लयसाधन की उपयोगी ज्ञान-शक्ति-बल-ऐश्वर्य-तेजः-वीर्य विशिष्ट, भगवान के आश्रय ग्रहण में और शरणागत की रक्षण में वात्सल्य, सौशील्य, स्वामित्व, सर्वज्ञत्व, सत्यप्रतिज्ञत्व, कृतज्ञत्व, स्थैर्य, पूर्णत्व, औदार्य, कारुण्य, आर्जव, मार्दव, सौहार्दय और शरण्यत्वादि अनन्त असंख्य स्वाभाविक और शक्त्यादि से जो पूर्ण, जो वेद प्रमाण गम्य जो सूर्य में तत्प्रकाशकरूप में और तदन्तरात्म रूप में, पृथिवी में उनकी आधार शक्ति रूप में और वेद समूह में तत्प्रतिपाद्य रूप में विदित, जो अहेतुक कारुण्यादि-वश जीवोद्धार के निमित्त मनुष्याकार में गुरु रूप में अवतीर्ण होकर ब्रह्म विद्या से जीव के अज्ञान को नाश करके ज्ञान प्रकाश करते हैं, उस भगवान् श्रीकृष्ण में मैं अपने आत्मीयवर्ग के साथ (वे सब वस्तुएँ जिनसे आत्मीयता है

अर्थात् जिनसे निजस्व का बोध होता है, उन सभी वस्तुओं के साथ) अपने आत्मा का होम (सम्पूर्णरूप में समर्पण) कर रहा हूँ।

इस अष्टादशाक्षर मन्त्र को नारायण (हंस भगवान्) सनकादि चतुःसन; चतुःसन से देवर्षिनारद और देवर्षिनारद से श्रीनिम्बार्क ने प्राप्त किया। इस प्रकार परंपरा क्रम से ये अष्टदशाक्षर मन्त्र इस संप्रदाय में चला आ रहा है। विष्णुयामल में यह स्पष्ट रूप से उक्त है कि—

नारायणमुखाम्भोजान्मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः ।
आविर्भूतः कुम्मारैस्तु गृहीत्वा नारदाय च ॥
उपदिष्टः स्वशिष्याय निम्बार्काय च तेन तु ।
एवं परम्पराप्राप्तो मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः ॥

गौतमीय तन्त्र में देवर्षिनारद गौतम ऋषि को अष्टादशाक्षर मन्त्र के सम्बन्ध में उपदेश देते हैं मन्त्र समूह के मध्य यह मन्त्र श्रेष्ठ है। इस मन्त्र का मुनि नारद, छन्द गायत्री, कृष्ण प्रकृति, दुर्गा अधिष्ठातृदेवता। वासुदेव-संकर्षण प्रद्युम्न-अनिरुद्ध-नारायण से पञ्चजन पञ्चपदात्मक से विख्यात हैं। हे गौतम ! यह ज्ञात होने पर मन्त्र साधक पुरुषार्थ चतुष्टय का लाभ करते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है—यह मैं सच बता रहा हूँ। यह मन्त्र गुह्य से गुह्यतर और वाञ्छा चिन्तामणि है—इत्यादि"।

(२) अष्टादशाक्षर "ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा" इस मन्त्र का अर्थ ऊपर में जैसा वर्णन किया है, "ओं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा" इस दशाक्षर गोपाल मन्त्र का अर्थ भी ऐसा ही है। उभय मन्त्र में पूर्व जो 'ओं' पद है उसकी संख्या में गणना नही की जाती है। इसीलिये प्रथम मन्त्र अष्टादशाक्षर कहा गया है एवं द्वितीय मन्त्र क्ली वीज को गुप्त कहा गया है इस मन्त्र को दशाक्षर कहा गया है। (१) इस दशाक्षर मन्त्र में अष्टादशाक्षर मन्त्र के अन्तर्गत "कृष्णाय" और "गोविन्दाय" येदो पद कम हैं। किन्तु क्लीं बीज परवर्त्ती समस्त पद ही उस क्लीं बीज के विवरण स्वरूप, यह पहले ही कहा गया है। सुतरां दशाक्षर मन्त्र में "कृष्णाय और "गोविन्दाय" पद न रहने पर भी उस पदद्वय के अर्थ "क्ली" बीज से मिलते हैं। सुतरां अष्टादशाक्षर मन्त्र का अर्थ और दशाक्षर मन्त्र का अर्थ एक ही प्रकार है। इसलिये पृथक रूप से दशाक्षर मन्त्र का अर्थ और लिखा नहीं जा रहा है।

गौतमीय तन्त्र में दशाक्षर मन्त्र सम्बन्ध में देवर्षिनारद गौतम ऋषि से कहते हैं—मन्त्र समूह में यह दशाक्षर मन्त्र श्रेष्ठ, गुह्याति गुह्य है। इसका मुनि नारद, छन्द

---

(१) गुप्तवीजस्वभावत्वाद्दशार्नं इति कथ्यते।
वीजपूर्वो जपश्चास्य रहस्यं कथितं मुने ॥ (गौतमीयतन्त्र)

विराट, श्रीकृष्ण देवता दुर्गा अधिष्ठातृ देवता है। इस मन्त्र को सर्वदेव व्यापक कहकर विराट कहा गया है। इस मन्त्र को गुरुादिष्ट प्रणाली में जप करने पर मनुष्य कृतार्थ होते हैं, पुत्रवान्, धनवान्, वाग्मी, लक्ष्मीमान्, पशुमान्, सुभग श्लाघ्य, यशस्वी, कीर्त्तिमान, सर्वलोकाभिराम और सर्वज्ञ भी होते हैं। इस मन्त्र से प्रेमलक्षणाभक्ति मिलती है। यह मन्त्र निर्वाण फलद है। दशाक्षर गोपाल मन्त्र का साधारण अर्थ है, जो इस विश्व का सृष्टिकर्ता, स्थिति लय कर्ता और गोपीगण का प्रियतम है, उस गोविन्द श्रीकृष्ण में स्वीय आत्मा और आत्मीय वर्ग को समर्पित कर रहा हूँ।

(३) द्वादशाक्षर "ओं नमो भगवते वासुदेवाय" मन्त्र का अर्थ—"ओं" इसका अर्थ पूर्व ही कहा गया है, नमः शब्द का अर्थ आत्मा और आत्मीय वर्ग का समर्पण। भगवत् और वासुदेव पद का अर्थ विष्णु पुराण में इस प्रकार कहा गया है कि—अव्यक्त, अजर, अचिन्त्य, नित्य, अव्यय, अनिर्देश्य, अरूप, हस्तपदादि विवर्जित, विभु, सर्वगत, भूत समूह की उत्पत्ति का बीज किन्तु अकारण, व्याप्य और व्यापक प्रभृति सभी रूप में ही ज्ञानि लोग जिनको ज्ञानचक्षु से दर्शन करते हैं, वही पर ब्रह्म है। मोक्षाभिलाषी व्यक्तिगण उनका ध्यान किया करते हैं। वही वेद में अति सूक्ष्म और विष्णु का परमपद कहा गया है। परमात्मा उस स्वरूप में "भगवत्" शब्द का वाच्य एवं भगवत् शब्द ही उस परमात्मा का वाचक है। शुद्ध, महाविभूतिशाली, सर्वकारणों का कारण, पर ब्रह्म में "भगवत्" शब्द प्रयुक्त हुआ करता है। भूत समूह का उत्पति, प्रलय, अगति, गति एवं विद्या और अविद्या को भी जानते हैं अतः वही भगवान शब्द का वाच्य है। समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यशः, श्री ज्ञान और वैराग्य इन छ का नाम है "भग"। ये छ गुण हैं जिनमें वे भगवान् हैं। भगवान् शब्द से यह भी समझाया जा रहा है कि वे जन्म मृत्यु जरा व्याधि, तृष्णादि हेयगुण रहित एवं उसमें ज्ञान, शक्ति, बल ऐश्वर्य, वीर्य और तेज स्वाभाविक रूप से पराकाष्ठा रूप में वर्तमान है।

जिस परमात्मा में समस्त भूतगण रह रहे हैं एवं जो समस्त भूतों में रहता है, समस्त जगत का धाता, विधाता, और प्रभु है उस परमात्मा का नाम वासुदेव है।

अतएव सम्पूर्ण मन्त्रार्थ हुआ—अव्यक्त अक्षर, अचिन्त्य, नित्य, अव्यय, अनिर्देश्य, अरूप, हस्तपद से विवर्जित, विभु, सर्वगत, नित्य, भूतसमूह की उत्पत्ति के बीज किन्तु अकारण, व्याप्य और व्यापक प्रभृति सभी रूप में ज्ञानिगण जिनको ज्ञान चक्षु से दर्शन करते हैं, मोक्षाभिलाषी व्यक्तिगण जिनका ध्यान किया करते हैं, जिसे अति सूक्ष्म और विष्णु का परमपद कहकर वेद में कहा गया है, जो शुद्ध, महाविभूतिशाली, सभी कारणों का कारण, जो भूत समूह की उत्पत्ति, प्रलय, अगति, गति एवं विद्या और अविद्या को जानते हैं, जो समग्र ऐश्वय, धर्म, यशः श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छ-भगों से विशिष्ट हैं जिनमें जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, क्षुधातृष्णादि हेय गुण नहीं हैं, जिसमें ज्ञान, शक्ति,

बल, ऐश्वर्य वीर्य और तेज स्वाभाविक रूप से परकाष्ठा रूप में वर्तमान हैं, जिसमें समस्त भूतगण बास कर रहे हैं एवं जो सर्वभूत में रह रहा है, जो समस्त जगत का धाता, विधाता और प्रभु है जो इस विश्व की सृष्टि, स्थिति और लयकर्ता है उस परमात्मा बासुदेव में मेरा आत्मीय वर्ग और हम अपने को समर्पण कर रहे हैं।

इस बासुदेव मन्त्र को देवर्षिनारद ने ध्रुव को प्रदान किया था। (यह भागवत के ४ र्थ स्कन्ध ८म अध्याय के ५४ श्लोक में वर्णित है एवं तत्पर उस मन्त्र का प्रभाव और माहात्म्यवर्णित है)।

(४) अष्टादशाक्षरी "श्रीमन्मुकुन्द चरणौ सदा शरणमहं प्रपद्ये" इस शरणागति मन्त्रार्थ—श्रीनिम्बार्काचार्य ने "श्री" शब्द का अर्थ "रमादेवी" किया है। वात्सल्यादि गुण समूह से स्वीय आश्रित जनगणों को प्रीति प्रभृति गुण समूह से भगवान् को आनन्दित करते हैं इस अर्थ में रमा। विश्व के सृष्टि-स्थिति-लय के कर्ता, विश्व नियन्ता सर्वशक्तिमान् सकल चेतन और अचेतन की अन्तरात्मा, ज्योतिर्मय समूह का ज्योतिः स्वरूप, ब्रह्मा रुद्रादि का स्तुत्य, 'सर्वज्ञ', सर्वव्यापी, आत्मानन्द पूर्ण (सच्चिदानन्दमय), आश्रितगणों का मोक्षदाता, सत्यकाम, सत्य संकल्प, "भगवान वासुदेव" देव पद का अर्थ है। उस देव की पत्नी इस अर्थ में "देवी"। मत् ("मतुपप्रत्यय") इसका अर्थ नित्य सम्बन्ध। अर्थात् "श्री" के साथ भगवान् का नित्य सम्बन्ध। "मुकुन्द"—जो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, विश्व की सृष्टि-स्थिति-लयकर्ता सर्वनियन्ता, वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य, स्वामित्व, कारुण्य मार्दव, सौहार्द, शरण्यत्व, सत्यप्रतिज्ञत्व, पूर्णत्व, औदार्यादि अनन्त कल्याण गुणों का आधार, जिनका विग्रह सच्चिदानन्दमय, दिव्य मंगलमय एवं नित्य स्वाभाविक सौन्दर्य सौगन्ध्य, सौकुमार्य, लावण्य, यौवनत्व उज्वलता, सुस्पर्शादि अनन्त कल्याण गुणसमूह के आधार, स्वीय स्वरूप गुणादि के अनुरूप, स्वरूप गुणादि विशिष्टा जगन्माता लक्ष्मी के द्वारा जिनका चरणारविन्दयुगल सतत सेवित है, जो स्वीय शरणागत अनन्यगति भक्तगण को प्रकर्ष रूप में मुक्ति प्रदान करते हैं। वह भगवान वासुदेव ही मुकुन्द पदवाच्य है।

"चरणौ" (उस मुकुन्द के) चरण युगल में। "सदा शरणमहं प्रपद्ये" सर्वकाल के लिए मैं शरणापन्न हो रहा हूँ। प्रपत्ति (शरणागति) का अर्थ आत्मनिक्षेप "प्रपत्तिश्चात्मविक्षेपः"। आत्मा और आत्मीय वर्ग (आत्म सम्बन्धीय सभी वस्तुओं) के समर्पण आत्मविक्षेप कहा जाता है—"आत्मात्मीयभरन्यासो ह्यात्मनिक्षेप उच्यते"। यह आत्मनिक्षेप (आत्मसमर्पण) पाँच अंगों से करना चाहिए। पाँच अंग हुए—

(१) आनुकुल्य का संकल्प, (२) प्रातिकूल्य का वर्जन, (३) वे निश्चय ही रक्षा करेंगे, यह भाव। (४) गोप्तृत्व (रक्षकत्व) रूप में वरण और (५) कार्पण्य (दीनता) इन पञ्चविध अंगों के साथ श्री भगवच्चरण में आत्मा-आत्मीय वर्ग का निक्षेप करना

हो शरणागति है। पाँच अंगों से आत्मसमर्पण के विषय में अस्मत्प्रणीत "श्रीनिम्बार्काचार्य, उनके दार्शनिक मतवाद और साधन प्रणाली" ग्रन्थ के षडविध शरणागति की व्याख्या करते समय आलोचना की गयी है। विस्तृत रूप में जो उन्हें जानना चाहते हैं, वे उसे पढ़ें।

सम्पूर्ण मन्त्रार्थ—जो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, विश्व की सृष्टि-स्थिति-लयकर्ता, सर्वनियन्ता, वात्सल्य सौशील्य-सौलभ्य-स्वामित्व कारुण्य मार्दव सौहार्द शरण्यत्व कृतज्ञत्व, सत्यप्रतिज्ञत्व पूर्णत्व औदार्यादि अनन्त कल्याण गुणों का सागर है, जिसका विग्रह सच्चिदानन्दघन और दिव्य मंगलमय एवं नित्य स्वाभाविक सौगन्ध्य सौकुमार्य लावण्य यौवन उज्वलता सुस्पर्शादि अनन्त कल्याण गुण समूह के आधार, स्वीय स्वरूप गुणदि के अनुरूप स्वरूप गुणादि विशिष्टा जगन्माता लक्ष्मी के साथ जिनका नित्य सम्बन्ध है एवं उस लक्ष्मी से जिनका चरणारविन्दयुगल निरन्तर सेवित है, जो स्वीय शरणागत अनन्यगति भक्तगणों को प्रकर्षरूप में मुक्ति प्रदान करते है। उस भगवान् वासुदेव के श्रीचरणयुगल में उनकी प्रसन्नता के अनुकूल आचरण और प्रतिकूल आचरण का वर्जन के संकल्प के साथ वे निश्चय ही मुझे रक्षा करेंगे—इस विश्वास के साथ उनके रक्षकत्व में वरण करके दीन (अनन्य गति अकिञ्चन) मैं अपने आत्मीय वर्ग मेरे संपर्कीय सभी चीजों के साथ मेरे आत्मा को निक्षेप समर्पण कर रहा हूँ।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि, श्री भगवान् के समस्त अंग ही जब दिव्य प्रकाश स्वरूप और आनन्दमय हैं तब शरणागति मन्त्र में उनके अन्य अंगों का त्याग करके उनक चरण युगलों में शरण ग्रहण करने की बात क्यों कही गयी है? इसके अलावा उनके किसी अंग के शरण ग्रहण न करके अंगी का ही शरण ग्रहण करने की बात क्यों नहीं कही गयी है? विशेषतः शरणागति का अर्थ जब आत्मसमर्पण एवं अन्य मन्त्र में उस आत्मसमर्पण श्री भगवान् में ही (अंगी में ही) करने की बात कही गयी है? इसका उत्तर यह कि, भगवान् ने स्वीय शरणागत पतित व्यक्ति को पवित्र करने का और उनके सभी अपराध क्षमा इत्यादि करने का अधिकार अपने चरण युगल में ही रक्खा है। जैसे इस संसार में कोई ज्ञानी गुणी समर्थ पुरुष के निकट गुरुतर अपराध होने पर उस पाप या अपराध से निष्कृति पाने के लिए अपराधी व्यक्ति अत्यन्त कातरता के साथ दीन भाव से उनके चरणों में पतित होकर क्षमा प्रार्थना करने पर वे उन्हें क्षमा करते हैं, तद्रूप संसारताप से तापित मुमुक्षु व्यक्ति कातर हो कर दीन बनकर उनके चरण में अपने आत्मीय वर्ग के साथ आत्मा को पतित [समर्पण] करने पर वे सर्वापराध क्षमा करके और उन को निष्पाप करके मोक्ष प्रदान करते हैं। इसलिए शरणागति मन्त्र में चरण युगलों शरण ग्रहण करने की बात कही गयी है, यह समझना होगा। और उनके चरण युगल में शरण ग्रहण करने पर उन्हीं की शरण ग्रहण करना होता है। इतना तक ही मन्त्रार्थ लिखित हुआ।

देव पूजा में निषिद्ध और विहित विषय

विष्णु पूजा में आकन्द पुष्प और मादार का फूल निषिद्ध हैं। रक्त चन्दन, रक्त पुष्प, विल्वपत्र और विल्व पुष्प के द्वारा कभी भी विष्णु पूजा न करे। उग्रगन्ध, गन्धहीन, कीटभक्षित, कृमिकेशादि दूषित, और वस्त्रावृत करके लाये हुए पुष्पों से पूजा नहीं करें। पद्म और चम्पक को छोड़कर अन्य पुष्प की कलिका से पूजा न करें। शुष्क पत्र, शुष्क पुष्प और शुष्क फल से देव पूजा निषिद्ध है। शेफाली और वकुलपुष्प को छोड़कर भूमि में पतित अन्य किसी पुष्पों से पूजा न करें। विल्वपत्र, खदिर पुष्प, आमलकी पत्र और तमाल पुष्प छिन्न-भिन्न होने पर भी वे दूषित नहीं होते हैं। पद्म पुष्प और आमलकीपत्र तीन दिन तक विशुद्ध रहते हैं, किन्तु तुलसी पत्र और बिल्व पत्र सर्वदा ही विशुद्ध हैं। करवी के पुष्प एक दिन तक पूजा के योग्य रहता है।

जाती पुष्प, केतकी पुष्प, नागकेशर, पाटलि, कह्लार चम्पक, उत्पल, टगर, यूथी, मल्लिका, नवमल्लिका, कुन्द मन्दार, श्वेतोत्पल, केशर, पीतझिन्टी, अशोक, सर्जपुष्प, विल्वकुसुम, वकपुष्प, आमलकीपत्र, कर्णिकाकुसुम और पलाश कुसुम—यथा संभव इन सभी पुष्प एवं यथालभ्य अपरापर पुष्प से देवता मात्र का पूजा किया जा सकता है। शक्ति देवता को आकन्द और मदार, सूर्य को टगर एवं गणेश और सूर्य को रक्त पुष्प अतिशय प्रिय हैं।

कुन्द, नवमल्लिका, यूथी, बन्धुक, केतकी, रक्तजवा त्रिसन्ध्या में स्फुरित रहता है मालती और स्वर्णकेतकी, कुंकुम, कुमुद और रक्त करवी—ये सब फूल शिव पूजा में निषिद्ध हैं।

पीतझिन्टी, टगर, श्वेतजवा, द्विविधा तुलसी, मन्दार कुसुम, कह्लार पुष्प कुश और काश पुष्प से देवी का पूजा न करें।

वकुल पुष्प, अशोक अर्जुन पुष्प—इन सभी फूलों का वृन्त त्याग करके पूजा करे। अपराजिता, जवा, नागकेशर, बन्धुक पुष्प, और मन्दार पुष्प ये सब वृन्तयुक्त ही ठीक हैं।

अक्षत द्वारा विष्णु पूजा न करें। ये बात कहा जाता है इसका अर्थ यह जो पुष्पादि उपचार के अभाव में केवल अक्षत से विष्णु पूजा न करें; किन्तु अक्षत व्यवहार न करें यह नहीं।

राघवभट्ट घृत वचन में जाना जाता है कि, सर्वदाविहित अविहित सभी पुष्प से सभी देवताओं का पूजा किया जा सकता है। इसमें भक्तियोग ही कारण है। विहित पुष्प के अभाव में अविहित पुष्प से पूजा करने पर पूजा सिद्ध होता है। भक्ति से विहित, जलज,

स्थलज सर्वविध पुष्प से देव पूजा होती है। विहित पुष्प के अभाव में अविहित पुष्प से पूजा की विधि भक्तिमान् के लिए समझना होगा।

धूस्तर पुष्प, अशोक पुष्प, वकुलपुष्प, श्वेत या कृष्णापराजिता—इन सभी पुष्पों से शक्ति पूजा ही श्रेयस्कर है।

विष्णु के निकट बत्तीस अपराध

[१] यानारोहण या पादुका पैर में रखकर भगवान् के मन्दिर में गमन, [२] देवता के उत्सव में विष्णु सेवा न करना, [३] विष्णु के संमुख उपस्थित हो कर प्रणाम न करना, [४] उच्छिष्ट अवस्था में या अशुचि-अवस्था में भगवान् की वन्दना करना, [५] एक हाथ से भगवान् को प्रणाम करना, [६] विष्णु के संमुख में अन्य देवता की प्रदक्षिणा करना, [७] विष्णु के संमुख पैर फैलाना, [८] भगवान् के संमुख वस्त्रान्तर द्वारा दोनों उरु बन्धनपूर्वक उपवेशन करना, [९] देवता के समक्ष शयन, [१०] भक्षण, [११] मिथ्या वाक्य कथन, [१२] उच्चैस्वर वाक्य प्रयोग, [१३] परस्पर कथोपकथन, [१४] क्रन्दन, [१५] कलह, [१६], [१७] एक को निग्रह और दूसरे को अनुग्रह करना, [१८] कर्कश वाक्य प्रयोग, [१९] भगवान् को कंबल से आवृत रखना, [२०] भगवान् के संमुख किसी को निन्दा करना, [२१] अन्य की स्तुति करना, [२२] भगवान् के संमुख अश्लील वाक्य कहना, [२३] अधो वायु त्याग, [२४] सामर्थ्य विद्यमान रहने पर भी समुचित उपचार न देना, [२५] भगवान को निवेदन न करके किसी द्रव्य का आहार करना, [२६] तत्तत समय में उत्पन्न फल भगवान् को न देना, [२७] दूसरे के भोजन में व्यवहार किया हुआ अवशिष्ट व्यञ्जन भगवान् को दान करना, [२८] भगवान् के तरफ पीछे करके (असंकुचित भाव में) उपवेशन, [२९] सत्पुरुषों को निन्दा करना, असत् की स्तुति करना, [३०] गुरु की स्तुति स्थल में मौनावलम्बन, [३१] आत्मस्तुति एवं, [३२] देवता की निन्दा; [३२] इस प्रकार बत्तीस, अपराधों की गणंना की गयी है।

किन्तु स्कन्धपुराण में इस प्रकार कहा गया है कि जो गीता के एक अध्याय का प्रत्येक दिन पाठ करता है, वह प्रत्येक दिन इस बत्तीस अपराध से मुक्त होता है—

"अहन्यहनि यो मर्त्यो गीताध्यायं तु सम्पठेत्।
द्वात्रिंशदपराधैस्तु ह्यहन्यहनि मुच्यते॥"

कार्त्तिक माहात्म्य में कहा गया है कि, जो तुलसी से शालग्राम शिला की अर्चना करता है, केशव उनके बत्तीस अपराध क्षमा करते हैं—

"तुलस्यां कुरुते यस्तु शालग्राम शिलार्चनम्।
द्वात्रिंशदपराधानि क्षमते तस्य केशवः॥"

पूजोपचार

नित्य पूजा पञ्चोपचार से ही करनी चाहिए विशेष पूजा सामर्थ्य के अनुसार दशोपचार, षोडशोपचार अथवा अष्टादशोपचार से करें।

(१) गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य इस पञ्चद्रव्य को ही पञ्चोपचार कहा जाता है।

(२) पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, पुनराचमनीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य इन दशविध द्रव्य को दशोपचार कहते हैं।

(३) पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, वसन, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, पुनराचमनीय, ताम्बूल, स्तवपाठ, तर्पण और नमस्कार इसको षोडशोपचार कहा जाता है।

(४) आसन, स्वागत, प्रश्न पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, वस्त्र, यज्ञोपवीत, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, अन्न, दर्पण, माल्य, अनुलेपन और नमस्कार इन सभी को अष्टादशोपचार कहते हैं।

द्रव्यशुद्धि

जिस धातु पात्र में शूद्र भोजन करता है वे सभी पात्र तीन बार क्षार और अम्ल जल से विधौत करने से ही विशुद्ध होता है एवं जो पात्र सूतिका, मदिरा, विष्ठा, और रजस्वला संस्पर्श से अशुद्ध होता है, वे पात्र अग्नि में निक्षेप करके कुछ समय तक दग्ध करने से ही शुद्ध होते हैं।

सोना और चाँदी के पात्र जल से विधौत करने पर एवं कांस्यपात्र भस्म से, ताम्र और पित्तल पात्र अम्ल से, एवं मृत्तिकापात्र अग्निपाक से शुद्ध होता है।

यदि कोई ब्राह्मण भग्नकांस्य पात्र में आहार करता है। तब उस ब्राह्मण को नदी में स्नान करके अष्टोत्तर सहस्त्र गायत्री जप और एकाहारी रहकर अपनी शुद्धि करनी चाहिए।

ताम्र, रौप्य, स्वर्ण, प्रस्तर ये सब द्रव्य भग्न और अभग्न दोनों रूपों में समान रहते हैं, अर्थात् सब पात्र भग्न होने पर भी अशुद्ध नहीं होते।

किसी सरोवरादि का जल अशुद्ध होने पर, उस सरोवर से एकशत, पुष्करिणी से ६० और कूप से तीस ३० कलसी जल लेकर उसी में डाल दें, उसके बाद मन्त्र पूत पञ्चगव्य सरोवर में निक्षेप करें।

एकादशी और महाद्वादशी व्रत के बारे में ज्ञातव्य विषय

वैष्णव के पक्ष में एकादशी के बारे में विधि—

शुक्ले वा यदि वा कृष्णे विष्णु-पूजन-तत्परः ।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति संप्राप्ते हरिवासरे ॥
अघं स केवलं भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते हरिवासरे ।
तद्दिने सर्वपापानि वसन्त्यन्नाश्रितानि च ॥

[भविष्य पुराण]

विष्णु पूजा परायण व्यक्ति शुक्ल और कृष्ण उभयपक्ष के बीच किसी एकादशी के दिन भोजन न करें। ब्रह्महत्या प्रभृति जो सब पाप है, एकादशी के दिन में वे पाप अन्न को आश्रय बनाते हैं। अतएव जो व्यक्ति एकादशी के दिन अन्न भोजन करता है, वह केवल पाप का ही भोजन करता है।

व्रततिथि दो प्रकार—(१) पूर्वविद्धा तिथि और, (२) उत्तरविद्धा तिथि ।

पूर्वविद्धा तिथि जैसे दशमोविद्धा एकादशी, उत्तरविद्धा तिथि जैसे द्वादशीविद्धा एकादशो इत्यादि। पूर्वविद्धा तिथि छोड़कर उत्तरविद्धा तिथि में व्रत करना चाहिए ऐसा नारदपञ्चरात्र में उपदिष्ट हुआ है। यथा—

"सर्वसिद्धान्तविज्ञानं वैष्णवानां बिदुर्बुधाः ।
पूर्वविद्धतिथित्यागो वैष्णवस्य हि लक्षणम् ॥
तस्मादुत्तरसंयोगि मतं वैष्णविकव्रतम् ॥"

(१) गन्ध (स्पर्श), (२) संग, (३) शल्य, और (४) वेध इस चार प्रकार के वेध से तिथि विद्धा होती है। इस चार प्रकार के वेध को ही वैष्णवगण परित्याग करें। गन्ध (स्पर्श) वेध ४५ दण्ड, सङ्ग वेध ५० दण्ड, शल्य वेध ५५ दण्ड, और वेध संज्ञक वेध ६० दण्ड इस प्रकार धर्मोत्तर में उपदिष्ट हुआ है। यथा—

"गन्धः संगः शल्यो वेधो वेधा लोकेषु विश्रुताः ।
स्पर्शादिचतुरो वेधान् वर्जयेद्वैष्णवो नरः ॥
स्पर्शः पञ्चचत्वारिंशः संगः पञ्चशताः मतः ।
पञ्चपञ्चाशता शल्यो वेधः षष्ट्या सतां मतः ॥"

श्री निम्बार्कसम्प्रदाय में इनमें से गन्ध (स्पर्श) वेध का ही त्याग करते हैं अर्थात्, ४५ दण्ड से (अर्द्धरात्रि का) अधिक की यदि दशमी रहती है, तो एकादशी तिथि में एकादशी व्रत न करके द्वादशो के दिन एकादशी व्रत करते हैं। इस निम्बार्कसम्प्रदाय के प्रवर्तक श्रीमद् सनतकुमार और देवर्षिनारद ने इस प्रकार यह उपदेश किया है। जैसे—श्रीमद् सनत्कुमार ने कहा है—

"महानिशामतिक्रम्य दशमी परगामिनी।
तत्र व्रतं तु वैष्णवा न कुर्वन्त्यस्मदाश्रयाः ॥"

महानिशा को (मध्यरात्रि को) अतिक्रम करके उसके बाद भी दशमी रहने पर मेरे आश्रित वैष्णवगण उस एकादशी तिथि में व्रत न करें।

देवर्षिनारद ने कहा है—

"निशामध्यं परित्यज्य दशमी चेत् परंगता।
तत्र नोपवसेत् साधुर्वैष्णवीं पदवीं गतः ॥"

रात्रि के मध्यभाग का परित्याग करके उसके बाद भी यदि दशमी रहती है, तो वैष्णवपदवी प्राप्त साधु उस एकादशी के दिन उपवास न करें।

श्रीमत् हयग्रीव का वचन भी इस प्रकार देखा जाता है। यथा—

"निशीथसमयं त्यक्त्वा दशमी स्यात्ततः परा।
नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम् ॥"

मध्य रात्रि छोड़कर दशमी यदि उसके बाद भी रहती है, तो उस एकादशी तिथि के दिन एकादशी व्रत का उपवास वैष्णव न करें।

शास्त्र में कहा गया है कि ब्रह्मचारी इत्यादि एकादशी व्रत अवश्य ही करें। गृहस्थ पुत्र भार्या कुटुम्वादियों के साथ एकादशी व्रत करें, यथा—

"गृहस्थो ब्रम्हचारी च आहिताग्निस्तथैव च।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥" (अग्निपुराण)
"सपुत्रश्च सभार्यश्च स्वजनै भक्ति संयुतः।
एकादश्यामुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि ॥" (कालिकापुराण)

उपवास के दिन बारंबार जलपान करने से, एक बार भी ताम्बुल (पान) भक्षण करने पर, दिन में शयन करने पर और मैथुन करने पर, व्रत दूषित हो जाता है। यथा—

"असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बुलभक्षणात्।
उपवासो विदुष्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात् ॥"

व्रत के दिन ब्रम्हचर्य, अहिंसा, सत्य भाषण और आमिषभक्षण का त्याग इन चारो का अवश्यमेव पालन करना चाहिए। देवल की उक्ति इस प्रकार ही है यथा—

"ब्रम्हचर्यमहिंसा च सत्यमामिषवर्जनम्।
व्रते चैतानि चत्वारि चरितव्यानि नित्यशः ॥"

एकादशी व्रत करने के नियम उपर्युक्त प्रकार होने पर भी निम्नलिखित आठ प्रकार

की महाद्वादशी मिलने पर एकादशी व्रत न करके महाद्वादशी का व्रत करना चाहिए। उसका विवरण अब लिख रहा हूँ।

ब्रम्हवैवर्त्तपुराण में उक्त आठ द्वादशी का नाम इस प्रकार है—

"उन्मीलिनी वञ्जूलिनी त्रिस्पृशा पक्षवर्द्धिनी।
जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी॥
द्वादश्योऽष्टौ महापुण्या सर्वपापहराद्विजाः॥"

अर्थात् हे द्विज! उन्मीलिनी, वञ्जूलिनी, त्रिस्पृशा, पक्षवर्द्धिनी, जया, विजया, जयन्ती और पापनाशिनी यह आठ द्वादशी महापुण्य प्रदा, सर्वपापहरणा है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में उक्त है कि—

"दशमीवेधराहित्येनैकादशी यदेधते।
न द्वादशी तु विदिता सोन्मीलनी भवेत् तदा।
शुद्धाप्येकादशी त्याज्या द्वादश्यां समुपोषयेत्॥"

दशमी वेधरहित होने पर भी एकादशी में यदि वृद्धि होती है एवं द्वादशी की वृद्धि नहीं हो तो उस द्वादशी को उन्मीलिनी नाम से संबोधित किया जाता है। इस उन्मीलनी द्वादशी लगने पर एकादशी शुद्ध होने पर भी उसे त्याग कर द्वादशी का उपवास (व्रत) करें।

पद्मपुराण में कहा गया है—

"सम्पूर्णैकादशी यत्र द्वादशी च तथा भवेत्।
त्रयोदश्यां मुहुर्तार्द्धं वञ्जुली सा हरिप्रिया॥
शुक्लपक्षेऽथवा कृष्णे यदा भवति वञ्जुली।
एकादशी दिने भुक्त्वा द्वादश्यां कारयेद्व्रतम्॥"

जिस पक्ष में एकादशी संपूर्ण रहती है, एवं द्वादशीसंपूर्ण रहकर त्रयोदशी के दिन द्वादशी अर्धमुहुर्त भी रहती है उस पक्ष के इस द्वादशी को वञ्जुली कहा जाता है। शुक्ल पक्ष में अथवा कृष्ण पक्ष में इस वञ्जुली द्वादशी रहने पर दशमी वेध न रहने पर भी) एकादशी के दिन भोजन करके द्वादशी में व्रत करें।

देवर्षिनारद त्रिस्पृशालक्षण—इस प्रकार कहा है—

"एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी।
त्रिस्पृशा नाम सा प्रोक्ता ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥"

प्रातःकाल में यदि कुछ समय एकादशी रहती है, उसके बाद द्वादशी रहे एवं रात्रि शेष में त्रयोदशी बने, तो उस द्वादशी को त्रिस्पृशा कहा जाता है। त्रिस्पृशा द्वादशी रहने पर एकादशी परित्याग करके द्वादशी में व्रत करें।

ब्रम्हवैवर्त्तपुराण में कहा गया है—

"कुहुराके यदा वृद्धि प्रयाते पक्षवर्द्धिनी ।
विहायैकादशी तत्र द्वादशीं समुपोषयेत् ॥"

जिस पक्ष की अमावस्या और पूर्णिमा की वृद्धि होती हो उस पक्ष की द्वादशी को पक्षवर्द्धिनी कहा जाता है । इस पक्षवर्द्धिनी द्वादशी के रहने पर एकादशी को छोड़कर द्वादशी के दिन उपवास (व्रत) करें ।

ब्रम्हपुराण में कहा गया है—

"द्वादश्यान्तु सिते पक्षे यदा ऋक्ष पुनर्व्वसु ।
नाम्ना सा तु जया ख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ॥
यदा तु शुक्लद्वादश्यां नक्षत्रं श्रवणं भवेत् ।
विजया सा तिथिः प्रोक्ता तिथिनामुत्तमा तिथिः ॥
यदा तु शुक्लद्वादश्यां प्राजापत्यं प्रजायते ।
जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा तिथिः ॥
यदा तु शुक्लद्वादश्यां पुष्यं भवति कर्हिचित् ।
तदा सा तु महापुण्या कथिता पापनाशिनी ॥
जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी ।
सर्वपापहरा ह्येताः कर्तव्याः फलाकांङ्क्षिभिः ॥"

शुक्ल पक्ष की द्वादशी पुनर्वसु नक्षत्र युक्त होने पर जया कहलाती है, यह सभी तिथियों में उत्तम तिथि है । शुक्ल पक्ष की द्वादशी में यदि श्रवणा रहे तो उस द्वादशी को विजया कहा जाता है, यह सभी तिथियों में उत्तम तिथि है । शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि में रोहिणी नक्षत्र रहने पर, उस द्वादशी को जयन्ती कहा जाता है यह सभी पापों को नष्ट करने वाली है और शुक्ल द्वादशीतिथि जब पूष्या नक्षत्र युक्त हो; तब उस द्वादशी को पापनाशिनी कहा जाता है, यह महापुण्य प्रदा है । जया, विजया, जयन्ती और पापनाशिनी ये सर्वपापनाशिनी हैं, फलाकाङ्क्षगणो के लिए इनका व्रत करना एकान्त कर्तव्य है । ये चार महाद्वादशी रहने पर एकादशी छोड़कर व्रत करें ।

जन्माष्टमी, रामनवमी और शिवचतुर्दशी इत्यादि सभी व्रतों में भी एकादशी के व्रत जैसे विद्धा विचार करके व्रत करें । अर्थात् जन्माष्टमी तिथि सप्तमी के द्वारा, रामनवमी तिथि अष्टमी तिथि से और शिव चतुर्दशी त्रयोदशी से विद्धा न हो, विद्धा होने पर दूसरे दिन व्रत होगा । इस विषय में कुछ शास्त्र वाक्य नीचे उद्धृत कर रहा हूँ । जन्माष्टमी के बारे में अग्नि पुराण में कहा गया है—

"अर्द्धरात्रमतिक्रम्य सप्तमी दृश्यते यदि ।
विनापि ऋक्षं कर्तव्यं नवम्यामष्टमीव्रतम् ॥"

अर्द्धरात्रि को अतिक्रम करके अर्थात् मध्यरात्रि के बाद यदि सप्तमी तिथि किञ्चिन्मात्र भी रहे, तो रोहिणी नक्षत्र न रहने पर भी नवमी में जन्माष्टमी व्रत करें।

ब्रम्हवैवर्त्तपुराण में भी इस प्रकार ही कहा गया है एवं अष्टमी रोहिणी नक्षत्र युक्त होने पर भी उस अष्टमी को छोड़ करके नवमी में जन्माष्टमी व्रत करने का उपदेश किया गया है। यथा—

"वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी।
विना ऋक्षेण कर्तव्या नवमीसंयुताष्टमी।
पूर्वमिश्रा सदा त्याज्या प्राजापत्याक्षसंयुता॥"

(ब्रम्हवैवर्त्तपुराण)

स्कन्दपुराण में भी इस प्रकार ही कहा गया है—

"पलवेधेऽपि विप्रेन्द्र सप्तम्यां त्वष्टमीं त्यजेत्।
सुराया विन्दुना स्पृष्टं गङ्गाम्भः कलसं यथा॥"

जन्माष्टमी व्रत के दिन मध्यरात्र में (श्रीकृष्ण जन्म समय) में पञ्चामृत से स्नान कराकर श्रीकृष्ण जी की पूजा आरती और स्तुति इत्यादि करें।

राम नवमी व्रत में भी अष्टमी विद्धा त्याग करके व्रत करें—

"नवमी चाष्टमी विद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः।"

(अगस्त्यसंहिता)

नारद पञ्चरात्र में भी इस प्रकार ही कहा गया है यथा—

"अष्टमी सहिता त्याज्या नारायणपरायणैः।"

इत्यादि।

श्री रामचन्द्र जी का जन्म समय दिवा द्विप्रहर। अतएव रामनवमी व्रत के दिन दिवा द्विप्रहर में (वेला १२ बजे) पञ्चामृत से स्नान कराकर पूजा आरती स्तुति इत्यादि करें। शिव चतुर्दशी व्रत में भी "शिवरात्रि व्रते भूतं कामविद्धं विवर्जयेत्" इत्यादि वाक्य से त्रयोदशी (काम) विद्धा चतुर्दशी को छोड़कर दूसरे दिन व्रत करने का उपदेश किया गया है। व्रत रात्रि को ४ प्रहर में ४ बार शिवजी की पूजा करने का नियम है। असमर्थ पक्ष में प्रथम प्रहर में ही ४ प्रहर की पूजा कर सकते हैं। हम वैष्णवों को शिवलिङ्ग पूजा न करके कृष्ण मूर्त्ति में या शालग्राम में शिव पूजा करना ठीक है। दूसरे व्रतों के बारे में भी इस प्रकार के नियम अर्थात् पूर्व तिथि की विद्धा होने पर दूसरे दिन व्रत करें।

नाम प्राप्ति के बाद शिष्यों के प्रति जो उपदेश दिया जाता है उसका मर्म

दोनों समय (प्रातः सायं) शुद्ध भाव से आसन पर बैठ कर उक्त नाम का जप करें। कर में जप कैसे किया जाय जान लें। दोनों समय जप के अतिरिक्त और सब समय (चलते, उठते, खाते और सोते सभी समय) उक्त नाम का मन ही मन जप करने का अभ्यास करें। जप के लिए आसन पर बैठ कर पहले मस्तक में तालु के नीचे ठीक बीच में जो सहस्त्र दल पद्म है, जिसे सहस्त्रार कहा जाता है, उसी पद्म के ऊपर मस्तक के भीतर ही सूर्य जैसा ज्योतिः है—उसी पद्म के ऊपर ज्योति के मध्य श्री गुरुदेव सामने मुख करके प्रसन्न बदन से विराजमान हैं—ऐसा भावना कर ध्यान करें एवं उन्हें मन ही मन प्रणाम कर उन्हें आत्मसमर्पण करें और प्रार्थना करें—"हे गुरुदेव आप ऐसी कृपा करें। जिससे हम आप द्वारा दिया गया नाम अनन्य चित्त से जप कर सकें तथा भगवान में अपने को मिला सकें, एवं अपना उससे पार्थक्य ज्ञान से मुक्ति मिल सकें। पार्थक्य भाव मिट जाने पर फिर गुरुध्यान का कोई प्रयोजन नहीं रहता, तात्पर्य यह है कि पहले भ्रूद्वय के मध्य भाग में श्री चरण रखकर श्री गुरु के तरफ मुख करके श्री श्री राधा कृष्ण प्रसन्न बदन ज्योतिर्मय मूर्त्ति में दण्डायमान है, इस प्रकार ध्यान करें और उन्हें आत्मसमर्पण करें। उनके पास प्रार्थना करें कि "हे भगवन् मैं तन्मय हो कर तुम्हारे नाम जप कर सकूं; एवं प्रत्येक नाम जप के साथ मेरा शरीर, मन, प्राण, आत्मा तुम्हारे चरणों में मिला सकूं। मेरा पार्थक्य बोध जिससे लुप्त हो जाय" यह सब तब होता है जब श्री श्री राधा कृष्ण के चरणों में मन स्थिर करके भागवन्नाम का सतत जप करता जाय एवं मन्त्र जप के साथ-साथ अग्नि में मन्त्र से घृताहुति देने के समान अपनी श्री चरणरूपी अग्नि में आहुति कर दे। जैसे अग्नि में घृताहुति देने पर घृत को अग्नि आत्मसात् कर लेती है, वैसे ही मुझे भी भगवान् आत्मसात् कर लेवें, इस प्रकार सोचें। इस प्रकार नाम जप करते-करते जब अपने को पूर्णरूपेण श्री भगवान में मिला दे सकोगे, तब और उससे पार्थक्य बोध न रहेगा, इसी स्थिति को समाधि कहते हैं। इस समाधि के होने पर भगवद्दर्शन होता है। अवश्य ही इस में कुछ विलम्ब होता है। धीरे-धीरे अभ्यास करने से ही हो सकता है। नाम की एक शक्ति है एवं अपने भी यदि दृढ़ता के साथ इस प्रकार श्री भगवान् में अपने को मिला देने का अभ्यास करें तो क्रमशः प्रगति होती रहेगी। तुम सब अपने स्वभाव एवं चरित्र बहुत स्वच्छ रखना, पिता माता स्वामी और पूजनीय की भक्ति करना, उनके आदेश से चलना अब तुम सब भगवान के दास या दासी बन गये। ऋषि कुल में आश्रय लाभ किये हो, उनकी दृष्टि सदा तुम्हारे ऊपर रहेगी। किसी प्रकार की चिन्ता या भय का कारण नहीं है। अब यह शरीर भगवान को अर्पित हो गया है अतः यह सर्वदा पवित्र ही रहें। इस का ध्यान रक्खें।

दीक्षा दान के बाद दीक्षित शिष्य गण के नित्यकर्म के सम्बन्ध में जो उपदेश दिया गया है उसका मूल भाव निम्न है—

सुबह ही उठें। रात्रि के शेष प्रहर में निद्रित न रहें। कम से कम ४/५ दण्ड रात्रि रहते ही जग उठने की चेष्टा करे। उठ कर पहले विस्तर पर बैठें। श्री गुरु स्मरण और मस्तकस्थ सहस्त्र दल पद्म के ऊपर उनका ध्यान और उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके भगवान् का ध्यान करें। मस्तक में सहस्त्र दल पद्मोपरि भगवत् इष्टमूर्ति का ध्यान करें। एवं बाद में भगवान् का विश्वमय सर्वरूपी भाव एवं आनन्दमय भाव धारण करने की चेष्टा करके सर्वभूत उन की मूर्ति है ऐसा समझने की कोशिश करें। उसके बाद विस्तर से उठने के पहले इस प्रकार दृढ़ निश्चय करें कि "मैं दिन भर शयन से पहले तक सभी को भगवद्बुद्धि से देखने की चेष्टा करूंगा और मन ही मन प्रणाम करूंगा" किसी के प्रति हिंसा विद्वेषादि नहीं करूंगा, नित्यनियम ठीक से पालन करूंगा। मन ही मन हमेशा इष्टमन्त्र का जप करूंगा, किसी के साथ असद्व्यवहार नहीं करूंगा, सभी के साथ सद्व्यवहार करूंगा, मिथ्या नहीं कहूँगा, सेवा बुद्धि से सभी दैनिक कार्य करूंगा, किसी को हार्दिक या किसी प्रकार का क्लेश नहीं दूंगा इत्यादि।"

बाद में शौचादि स्नान करके स्वच्छ धौत वस्त्र पहन कर आसन पर बैठें। कम्बल का ही आसन श्रेष्ठ है। बैठकर तिलक करें। भगवान् के अंग में ये तिलक चिह्न है। ये शरीर की हमेशा रक्षा करेंगे।

(शरीर के कौन-कौन स्थान में एवं कैसे-कैसे तिलक धारण करें यह मालूम होना चाहिए। इसके बाद मेरुदण्ड सीधा करके भजन में बैठे। यथा सुख आसन स्थिर कर बैठें।

प्रथम मन को भौंहों के मध्य में स्थिर करें। यदि एक बार में न हो सकें, तो पहले नासाग्र में दृष्टि और मन स्थिर कर बाद में भ्रूद्वय के मध्य मन को खींच कर लायें। उसके बाद भौंहों से उर्द्धदिशा में मन की दृष्टि चालित करके ब्रह्मरन्ध्र के उपरिभाग में ज्योतिर्मण्डल-मध्यवर्त्ती दण्डायमान श्री गुरु मूर्ति (अपना जिस तरफ मुख हो श्री गुरु का मुख भी उसी तरफ है इस प्रकार) कुछ समय ध्यान करें। बाद में मन ही मन उन्हें दण्डवत् प्रणति करें।

इसके बाद श्री श्री राधा कृष्ण मूर्ति का ध्यान करें। वे अपने तरफ मुख करके है एवं उनके चरण अपने भ्रूद्वय के मध्यस्थान में स्थित हैं, इस प्रकार ध्यान करे। अपने बायें आँख के सम्मुख में श्रीकृष्ण एवं दायें आँख के सम्मुख में श्री श्री राधा रानी का ध्यान करें। वे प्रसन्न बदन से देख रहे हैं इस प्रकार कुछ समय तक भक्तिपूर्वक ध्यान करें। बाद में भक्तिपूर्वक मन ही मन दण्डवत् प्रणति करके प्रार्थना करे "प्रभु, मैं तुम्हारा दास (अथवा दासी), मुझे सर्वदा अपने चरणों में स्थान देवें।

उसके बाद माला दायें हाथ हृदय के पास धारण करें और जप प्रारम्भ करें। भ्रूद्वय के मध्य में मन स्थिर करके—वहाँ मन्त्रोच्चारण करें। मन्त्र की ध्वनि जो सुस्पष्ट रूप में हो रहा है यह अनुभव करने की चेष्टा करें। तब किसी मूर्ति का ध्यान नहीं करना होगा। स्थिर चित्त में मन्त्र की ध्वनि कान में सुनते रहे। (यह मन्त्र ध्वनि ही भगवद्‌रूप है, इस प्रकार सोचें। श्री श्री राधा कृष्ण के चरण में मन स्थिर करके) यह नाम निरंतर जपते रहे। एवं मन्त्र जप के साथ-साथ अग्नि में मन्त्र से घृताहुति देने की तरह अपनी आहुति देते रहें। जैसे अग्नि घृत आहुति देने पर घृत को आत्मसात कर लेता है, उसी प्रकार मुझे भी भगवान् आत्मसात् कर ले रहे हैं इस प्रकार धारणा करें। इस प्रकार नाम जप करते हुए अपने को एक बार श्री भगवान में मिला दें और कोई पार्थक्य बोध नहीं रक्खें, उसी अवस्था को समाधि कहा जाता है। यह समाधि होने पर भगवान् दर्शन देते हैं। अवश्य ही इसमें बिलम्ब होता है। धीरे-धीरे अभ्यास करने से हो सकता है। मन्त्र की शक्ति है एवं अपनी दृढ़ आस्था के साथ अभ्यासपूर्वक उसमें अपने को तल्लीन करने से ध्यान की साधना पूर्ण हो जावेगी।

माला के बड़े दाने से जप शुरू करें। माला में तर्जनी और कनिष्ठा अंगुली स्पर्श करना निषिद्ध है। अंगुष्ठ, मध्यमा और अनामिका के द्वारा दाना पकड़ कर जप करना चाहिए। सुमेरू लाँघ कर, न जपें। एक बार शेष होने पर माला घूमा कर फिर छोटे दाने के तरफ से आरंभ कर जप करें। माला में साधारणत: १०८ दाने रहते हैं। किन्तु एक बार माला जप शेष होने पर १०० बार मन्त्र जप हुआ इस प्रकार गणना करना चाहिए। एक घण्टे या डेढ़ घण्टे रहकर जप करें। अथवा जितना हो सके जप करें। जिन लोगों का अधिक कार्य होवे जितना हो सके जप करें। किन्तु प्रत्येक दिन ही जप करना चाहिए।

जप करते समय बायें हाथ बायें घुटने के ऊपर बायें घुटने के ऊपर गदेली रखें। कितना जप किया गया उसकी संख्या बायें हाथ में ही रखना नियम है। (किस प्रकार बायें हाथ में संख्या रखते हैं। यह जान लेना होगा।)

जप शेष होने पर माला रख दें। उसके बाद भ्रूमध्य में श्री श्री राधाकृष्ण का ध्यान (पूर्ववत) प्रीतिपूर्वक करें। उसके बाद मन ही मन दण्डवत् प्रणति करके कहें, "प्रभु मैं तुम्हारा दास (वा दासी हूँ), मुझे श्रीचरण कमल में हमेशा स्थान देवें।"

उसके बाद फिर मस्तक में (पूर्ववत्) गुरु मूर्त्ति का ध्यान कर मन ही मन दण्डवत् प्रणाम करें। एवं श्री गुरु के पास आशीर्वाद हेतु प्रार्थना करें।

साधारणत: एक बार प्रातः और सायं खूब स्थिर चित्तसे जप करें। अगर कोई काम रहे तो वे सब चुका कर जप शुरू करें।

दूसरे समय में चलते, घूमते, सोते और बैठते (इतना ही नहीं शौच में भी बैठ कर भी), नाम जप किया जा सकता है। किन्तु माला में नहीं, मन ही मन। व्यर्थ समय नहीं गँवायें।

अशौचादि किसी अवस्था में माला जप एवं तिलक स्वरूप बन्द न करे। किन्तु स्त्री लोग अशुचि के प्रथम तीन रोज और प्रसव के समय में प्रसूति गृह में रहते समय माला न लेवें एवं तिलक स्वरूप न करे। उस समय भी मन ही मन जप किया जा सकता है। मद्य, मांस अण्डा प्याँज और लहसुन खाना निषेध है; साधारणतः उच्छिष्ट भी न खायें।

जूता पैर में न रखकर ही जप करना ठीक है। यह जप व्यवस्था मर्यादा के लिए है। किन्तु हमेशा ऐसा सम्भव नहीं है। अवस्था विशेष में जूता पैर में रखकर ही जप किया जा सकता है।

सेवा बुद्धि से समस्त दैनिक कार्य करे। किसी को कष्ट नहीं देना। शयन करने से पहले विस्तर पर बैठकर प्रत्येक दिन दैनिक कार्यावली समस्त स्मरण करके परीक्षा कर देखें कि प्रातःकाल जो दृढ़ निश्चय किया था। ऐसा चल सका कि नहीं, ठीक सेवा बुद्धि से कार्य किया कि नहीं, एवं सर्वदा इष्ट मन्त्र का मन ही मन जप कर सका कि नहीं यदि किसी विषय में त्रुटि हुई हो, तो आगामी दिन में सावधान रहें एवं तद्रूप और त्रुटि न हो, इस प्रकार संकल्प करके उसमें कृतकार्यता के निमित्त श्री गुरु और श्री भगवान की कृपा प्रार्थना करे। इस के बाद इष्टमन्त्र जप करते हुए सो जायँ।

श्रीगुरुपरम्परा

१. श्री हंस (नारायण भगवान्)
२. श्री सनकादि भगवान्
३. श्री नारद भगवान्
४. श्री निम्बार्क भगवान्
५. श्री निवासाचार्य जी महाराज
६. श्री विश्वाचार्य जी ,,
७. श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी ,,
८. श्री विलासाचार्य जी ,,
९. श्री स्वरूपाचार्य जी ,,
१०. श्री माधवाचार्य जी ,,
११. श्री बलभद्राचार्य जी ,,
१२. ,, पद्माचार्य जी ,,
१३. श्री श्यामाचार्य जी महाराज
१४. ,, गोपालाचार्य जी ,,
१५. ,, कृपाचार्य जी ,,
१६. ,, देवाचार्य जी ,,
१७. ,, सुन्दरभट्टाचार्य जी ,,
१८. ,, पद्मनाभभट्ट जी ,,
१९. ,, उपेन्द्रभट्ट जी ,,
२०. ,, रामचन्द्रभट्ट जी ,,
२१. ,, वामनभट्ट महारा[ज]
२२. ,, कृष्णभट्ट जी ,,
२३. ,, पद्माकरभट्ट जी ,,
२४. ,, श्रवणभट्ट जी ,,

२५. श्री भूरिभट्ट जी महाराज
२६. ,, माधवभट्ट जी ,,
२७. ,, श्यामभट्ट जी ,,
२८. ,, गोपालभट्ट जी ,,
२९. श्री बलभद्रभट्टाचार्य जी महाराज
३०. श्री गोपीनाथभट्ट जी ,,
३१. श्री केशव भट्ट जी ,,
३२. श्री गांगलभट्ट जी ,,
३३. श्री जगद्विजयी श्री केशव काश्मीरीभट्ट जी ,,
३४. श्री आदि वाणीकार श्री श्री भट्टाचार्य जी ,,
३५. श्री महावाणोकार श्री हरिव्यास देवाचार्य जी महाराज
३६. ,, स्वभूराम देवाचार्य जी महाराज
३७. ,, कर्णहर देवाचार्य जी ,,
३८. ,, परमानन्द देवाचार्य जी ,,
३९. ,, चतुर चिन्तामणि देवाचार्य
४०. ,, मोहनदेवाचार्य जी ,,
४१. ,, जगन्नाथदेवाचार्य जी ,,
४२. श्री माखनदेवाचार्य जी महाराज
४३. ,, हरिदेवाचार्य जी ,,
४४. ,, मथुरादेवाचार्य जी ,,
४५. ,, श्यामलदास जी ,,
४६. ,, हंसदास जी ,,
४७. ,, हीरादासजी ,,
४८. ,, मोहनदास जी ,,
४९. ,, नेनादास जी महाराज ,, व्रजविदेही जी ,,
५०. ,, काठकौपिनप्रवर्त्तक श्री इन्द्रदास जी काठियाबाबा महाराज
५१. ,, बजरंगदास जी ,, (नागा) जी महाराज
५२. ,, गोपालदास जी ,,
५३. ,, देवदास जी ,,
५४. ,, ब्रजविदेही महन्त चतुःसम्प्रदाय ,, महन्त श्री रामदास जी काठिया बाबा
५५. ,, ब्रजविदेही महन्त चतुःसम्प्रदाय ,, महन्त श्री सन्तदास जी काठिया बाबा
५६. ,, ब्रजविदेही महन्त चतुःसम्प्रदाय श्री महन्त ,, धनञ्जयदास जी काठिया बाबा
५७. वर्त्तमान ब्रजविदेही महन्त चतुःसम्प्रदाय श्री महन्त श्री रासविहारी दास जी काठियाबाबा

श्रीश्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः

श्री श्री व्रजविदेही महान्त प्रशस्ति

झिंझिट एक ताला

जयतु जय, दास धनञ्जय, व्रजविदेही महान्त महाराज।
जयतु जय, करुणामय चरणे प्रणति तोमारे आज ॥ १ ॥ ध्रुवपद ॥
काष्ठ, कठिन, कौपीनवन्त, शिरे जटाजूटी चुमे पदान्त,
ललाटे तिलक उज्ज्वल कान्त, श्रीतुलसीकण्ठे अपूर्व साज ॥ २ ॥
भजिते भजिते श्याम सुन्दर, लभिला ललित श्याम कलेवर,
कृष्ण प्राय सर्वचित्तहर, मधुर कण्ठे पिक पाय लाज ॥ ३ ॥
अरुण नयने करुण दृष्टि जगते करिछे अमृत वृष्टि,
करिया कल्याण कुसुम सृष्टि, अशुभेर शिरे हानिछे वाज ॥ ४ ॥
सतत सुस्मित वदन चन्द लोचन चकोर परमानन्द,
हेरिया मोहित भकतवृन्द, भूलिला आपन विषय काज ॥ ५ ॥
सकल शास्त्र सुनिष्णात, भजन प्रवीण परहिते रत,
साधिते आपन जीवनव्रत, तराइले कत नर समाज ॥ ६ ॥
करिया श्रीकृष्ण मन्त्रराज दान, मृत्यु व्याल भीत करि परित्राण,
कलिहत जीवे, संचारिले प्राण, लभिले सुयश: भुवन माझ ॥ ७ ॥
श्रीगुरुपादपद्मैकनिष्ठ, व्रजवल्लभगोपालप्रेष्ठ ,
मैत्रीकरुणागुणभूयिष्ठ शिरे संश्लिष्ट भकति ताज ॥ ८ ॥
महान्त स्वभाव तारिते पामर, निजकार्य विना याओ पर घर,
जीवोद्धार लागि सदाई तत्पर, पर्यटन तव शुधुइ व्याज ॥ ९ ॥
शिलं शैले तव शुभ पदार्पण जा गाइल प्राणे नव जागरण,
से शुभ विजय करिया स्मरण प्रणमि चरणे हे परिव्राज ॥१०॥
कि दिये पूजिबे एइअकिंचन, बनफूल शुधु करेछे चयन,
मिशाइये ताहेभकति चन्दन, दिल "हरिदास" दुष्कृति भाज ॥११॥

१ ला जेठ १३ ५६ वाँ — शिलं वासी जनसाधारण के तरफ से

गीत — श्री हरिनारायण देव कविरंजन कर्तृक रचित

श्रीश्रीव्रजविदेही महान्त प्रशस्ति

जय, जय, जय जय गुरुदेव
व्रजविदेही धनञ्जयदास,
चारिसम्प्रदाय उच्च शिखरे

विराजिन-यिनि व्रजेते वास।
करुणाघन मधुर मूरति
अधरे अमिय मधुरहास,
भकतिर रसे श्री अङ्ग भावना,
श्रीवदने सदा मधुर भाष;
अरुण नयने करुण चाहनि
विनाशिछे-भय शमन पाश,
श्री पदयुगल शारद-कमल-
वराभय-कर भक्त आश॥
आशैशव सदा निष्ठब्रह्मचारी
षड् दरशेन अटुट ज्ञान,
विशेषेते न्याय वेदान्त दरशने,
नाहिरे-तुलना नाहि ए मान॥
निर्विकार शान्त द्वन्द्वरहित
सदा समाहित चितटो यार
निरमिल विधि (हेन) सुमंगल निधि
(भव) पारेर उपाय हल प्रकाश॥

(श्री गोपेन्द्र श्याम, शिलचर)

श्रीश्रीश्रीगुरुमहिम्नः स्तोत्रम्

(श्रीअमरप्रसादभट्टाचार्यविरचितम्)

नमः श्रीगुरवे नित्यं नमोऽस्तु गुरवे सदा।
अज्ञानध्वान्तसंमग्नं यो मामुद्धृतवान् मुदा॥ १॥

श्री कृष्ण कृपया नूनं प्राप्तवानस्मि त्वां विभो।
कृष्णरूपो भवान् ह्येतद् विस्मरेयं न जातुचित्॥ २॥

देहि त्वच्चरण द्वन्द्वे भक्ति प्रेम्नाजितं सदा।
तत्वज्ञानप्रदानेन चक्षुरुन्मीलितं कुरु॥ ३॥

नास्ति पारो महिम्नस्ते नास्ति तुला तव क्वचित्।
नास्ति सीमा गुरुत्वस्य त्वं नाम्ना कार्यतो गुरुः॥ ४॥

येन संदर्शितं विष्णोः सर्वव्याप्तं परं पदम्।
दत्त्वा विद्यां परं ज्ञानं दत्तं येन नमोऽस्तुते॥ ५॥

निम्बार्कसम्प्रदायो यः कृष्णोपासनतत्परः ।
सदा गुर्वेकनिष्ठः सन् राजते धरणीतले ॥ ६ ॥
रामदासो यतिश्रेष्ठ प्रादुर्बभूव तत्र तु ।
'काठिया'-नामतः ख्यातो योगी ब्रह्मविदा वरः ॥ ७ ॥
परात्परः गुरुं त्वञ्च भवसंसारतारकम् ।
रामदासं सदा वन्दे भक्त्या परमया मुदा ॥ ८ ॥
तच्छिष्यः सन्तदासो यस्त्यागी सत्य परायणः ।
गुरुसेवी गुरुप्रेमी सत्तमो ब्रह्मवित्तमः ॥ ९ ॥
शास्त्रग्रन्थप्रणेता च इष्ट विग्रहस्थापकः ।
तं नौमि सततं भक्त्या सन्तदासं परं गुरुम् ॥ १० ॥
सन्तदासस्य शिष्यो यः सन्तदासप्रियंकरः ।
'काठिया' नाम प्रख्यातो ह्यस्मिन् भारतमण्डले ॥ ११ ॥
तं धनञ्जयदासञ्च गुरुं वन्दे ह्यहर्निशम् ।
शरणञ्च सदा यामि नित्यं गुर्वात्मदैवतः ॥ १२ ॥
ब्रह्मानन्दामृतास्वादी देहात्मबुद्धिवर्जितः ।
ईशार्पितमनःप्राणो योऽहं बोधविवर्जितः ॥ १३ ॥
यद्वपुर्दर्शनेनैव-तापशान्तिः प्रजायते ।
चित्तह्लादकरं तञ्च प्रणमामि सदागुरुम ॥ १४ ॥
परमेशे सदा रक्तं यतिवरमनुत्तमं ।
निश्चिन्तं परमानन्दं चित्तशान्ति प्रदायकम् ॥ १५ ॥
वासुदेवस्वरूपं तं जगन्मंगलविग्रहम् ।
आविर्भूत नराधारे गुरं ब्रह्म नमाम्यहम् ॥ १६ ॥
जीवोद्धारव्रते युक्तो भगवच्छक्तिधारकः ।
जीवानुद्धरते यश्च करुणापूर्णमानसः ॥ १७ ॥
सदाप्रशान्तचित्तो यो वासुदेवपरायणः ।
तं नौमि सततं भक्त्या परमानन्दसद्गुरुम् ॥ १८ ॥
संगोपितात्मशक्तिर्यश्चरति लोकवत् सदा ।
तं गुरुं सततं वन्दे ममत्वबुद्धिवर्जितम् ॥ १९ ॥
योऽद्वेष्टा सर्वभूतानां समदुःखसुखः क्षमी ।
समत्वयोगयुक्तं तं गुरुं वन्दे अहर्निशम् ॥ २० ॥
शास्त्रानुशीलने निष्ठं सदाचारपरायणम् ।
श्रीधनञ्जयदासं प्रपद्येऽहं सदा गुरुम् ॥ २१ ॥

गुरुभक्तिसमायुक्तं गुरोः प्रियंकरं सदा।
धनञ्जय गुरुं वन्दे गुरुसेवापरायणम् ॥ २२ ॥
गुर्वानन्दसदानन्दं गुर्वर्थे सर्वचेष्टितम्।
गुरौ हुतामनः प्राणं गुरुं नौमि धनञ्जयम् ॥ २३ ॥
शास्त्रज्ञो मन्त्रविद्‌भक्तः शास्त्र व्याख्यान क विदः।
शास्त्रप्रचारको यश्च निम्बार्करथचारणः ॥ २४ ॥
निम्बार्कमतव्याख्याता द्वैताद्वैतप्रचारकः ।
(तं) धनञ्जय गुरुं नौमि ज्ञाने भक्तौ प्रतिष्ठितम् ॥ २५ ॥
पूर्वाचार्यचरित्राणि योऽलिखत् सर्वमंगलः।
प्राकाशयच्च यस्तानि जगत्कल्याणकाङ्क्षया ॥ २६ ॥
स्थापितवांश्च देशेषु दयाश्रमान् धर्मगुप्तये।
सर्वहिते रतं तञ्च भजामि सततं गुरुम् ॥ २७ ॥
सिद्धान्तनिर्णये दक्षं शास्त्रानन्दं विमत्सरं।
श्रोत्रियं तं गुरुं नौमि अज्ञानतिमिरापहम् ॥ २८ ॥
येन प्रज्वालितो ज्ञानप्रदीपो हृदिकन्दरे।
नाशिताः संशयाः सर्वे छेदितं भवबन्धनम् ॥ २९ ॥
दर्शितमात्मरूपं तत जनिता भगवद्‌रतिः।
महिम्नः स्तवने तस्य कः समर्थः कदा भवेत् ॥ ३० ॥
हे गुरो! महिमानस्ते सदा स्फुरन्तु मे हृदि।
भवतु विमला भक्तिस्त्वत्पादकमले मम ॥ ३१ ॥
क्षमाशीलः सदैव त्वं सततं भक्तवत्सलः।
नित्यापराधशीलस्य अपराधान् क्षमस्व मे ॥ ३२ ॥
नास्ति मे योग्यता काचित्त्वमेव शरणं मम।
अशरणशरण्यस्त्वं कृपां कुरु ममोपरि ॥ ३३ ॥
केशेषु मां गृहीत्वा त्वं संसारसागरान्नय।
आनीय पादपद्मे ते स्थापय मां सदाच्युतम् ॥ ३४ ॥
नमोऽस्तु गुरवे तुभ्यं संसारार्णवतारक।
संसारसागरे मग्नं मां समुद्धर हे गुरो ॥ ३५ ॥
न जातु विस्मरेयं त्वां न त्वं मां विस्मरेः क्वचित्।
भवतान्मे परा भक्तिस्त्वयि जन्मनि जन्मनि ॥ ३६ ॥
देहि मे प्रेमभक्तिं त्वं कृपया स्वात्मसात् कुरु।
गुरो! त्वच्चरणद्वन्द्वे भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥ ३७ ॥

!! जय श्रीराधे !!